चरित्र

चरित्र

विमल मित्र



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

प्रथम

विख्यात कथाशिल्पी विलियम फॉकनर को कुछ वर्ष पहले साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। पुरस्कार-सभा में दिया गया उनका भाषण अपनी सारगर्भिता के कारण चिरस्मरणीय बना रहेगा। हम सब जब आज अपने अस्तित्व की समस्या से ही परेशान बने हुए हैं तब भला आत्मा की समस्या पर लिखने की गरज किसे होगी ? भय ही भय छाया है आज चारों ओर, और भय भी एक नहीं, अनेक हैं। मृत्यु का भय, विनाश का भय, मिट जाने का भय। आज के जो तरुण लेखक हैं वे हृदय की समस्याओं को छोड़कर देह की दलदल में फंस गये हैं, हाय, यह नश्वर देह ही जैसे सब कुछ हो !

मनुष्यता, धर्म, महत्त्व, मर्यादा, दया, सहानुभूति, त्याग आदि विषयों पर लिखने की चिन्ता किसे है ? इन सबपर अगर अब कोई नहीं लिखता तो क्या होगा लिखकर ? क्या होगा व्यर्थ परिश्रम करके ?

विलियम फॉकनर ने उस सभा में तरुण लेखकों के संदर्भ में कहा था : 'यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए उसे (एक तरुण लेखक को) कि भयभीत होना बहुत बड़ी हीनता है: और उसे भय को भूल जाना चाहिए सदा के लिए। प्रेम और सम्मान, सहानुभूति और आत्मगौरव, करुणा और त्याग—केवल इन्हीं सार्वजनीन स्थिर सत्यों को उसे अपनी कार्यशाला में स्थान देना चाहिए। उसकी कथा भंगुर और अलीक है इसके बिना। जब तक वह ऐसा नहीं करता, एक अभिशाप की छाया में होता है उसका श्रम। क्योंकि वह प्रेम के विषय में न लिखकर वासना के विषय में लिखता है, ऐसे पराजय के विषय में लिखता है जिसमें कोई किसी मूल्यवान वस्तु को नहीं खोता, ऐसे विजय के विषय में लिखता है जिसमें आशा की एक किरण तक नहीं होती और सबसे बुरी बात तो यह है कि उसकी रचना में सहानुभूति या करुणा नाममात्र को भी नहीं होती।......हृदय की बात नहीं लिखता वह, वरन् (शरीर की) ग्रन्थियों की बात लिखता है।'

अपने आसपास के लोगों को देखकर तभी मैं सिर्फ फॉकनर की बातों पर गौर करने लगता हूं। कहां, इन आदमियों के बारे में तो कोई नहीं लिखता, मेरे इर्द-गिर्द जो लोग हैं उनके बारे में। तकलीफें बरदाश्त करना ही तो बड़ी

बात नहीं है, टिके भी तो रहना पड़ेगा।

फॉक्नर ने कहा था : 'मानव के अस्तित्व का अंत मैं नहीं मानता।' फिर आगे कहा था : 'मनुष्य अमर है यह कहना सरल है चूंकि उसका अस्तित्व कायम रहेगा। मेरा विश्वास है कि केवल मनुष्य का अस्तित्व ही नहीं कायम रहेगा, वह विजयी होगा।'

आज की इस तबाही के माहौल में ये बातें फिर से दिमाग में ताज़ा होने पर अच्छा लग रहा है। जिनके बारे में लिखने जा रहा हूं सहनशीलता की अन्तिम सीमा तक पहुंचकर भी इन्होंने हिम्मत नहीं हारी। इन्हें मैंने अपनी दैनन्दिन जीवन-यात्रा में पाया है, या किसीसे इनकी कहानी सुनी है, या फिर इन्हें अपने बचपन के अनुभव-भांडार से ढूंढ़ निकाला है। ये न महापुरुष हैं, न महात्मा। आप और मुझ जैसे चारों ओर हाट-बाट-दफ्तर में फैले-फूटे मेहनत-कश लोग हैं। जितना इनके जीवन को देखा है उतना ही मन ही मन श्रद्धा-निवेदन किया है इनके प्रति। ये सब ही विलियम फॉक्नर के चरित्र हैं, और इन्हींको लेकर बनी है हमारी आज की दुनिया। इन्हींके लिए आगे बढ़ रही है यह दुनिया। इनका न अंत है, न विनाश। अपनी ही कोशिशों से ये ज़िन्दा हैं, और हमेशा ज़िन्दा रहेंगे भी। क्रमशः अब इन्हीं चरित्रों की कथाओं को आरम्भ करता हूं।

मेरी बहुत दिन से इच्छा थी कि जहाजी सफर पर कोई उपन्यास या कहानी लिखूं। लेकिन इधर फेरी-स्टीमर के अलावा जहाज पर चढ़ने की खुश-किस्मती कभी नहीं हासिल हुई।

एक बार स्टीमर पर चढ़ा था मोकामा घाट से सिमरिया घाट तक। करीब घंटे-भर की यात्रा थी। अब वह स्टीमर की यात्रा नहीं रही। इस पार से उस पार जाने के लिए अब पुल बन गया है। अब हावड़ा स्टेशन पर मिथिला एक्स-प्रेस पर सवार होकर सीधे बरौनी जंकशन पहुंचा जा सकता है। उसके बाद वहां से जहां तबीयत हो चले जाओ। दरभंगा, मुजफ्फरपुर, रक्सौल, नेपाल, लखनऊ। फिर बड़ी लाइन से एकदम देहरादून तक।

और एक मर्तबा एक दोस्त की बरात में बराती बनकर भाग्यकुल गया था। भाग्यकुल के सफर में काफी वक्त बिताना पड़ता है स्टीमर पर। बड़ा अच्छा लगा था स्टीमर का सफर उस बार। खास तौर से दोस्तों की एक

जमान थी साथ इसलिए।

तीसरी बार चढ़ा इस बार।

एकाएक एक विज्ञापन पर नजर पड़ी।

सुबह का अखबार खोलते ही उस विज्ञापन को देखा। लिखा था : 'एम० एम० हैदरी', इसके बाद 'तारीख ३ अक्टूबर, १९६६ सोमवार को ४२ नं० खिदिरपुर डॉक से पोर्ट ब्लेयर की ओर रवाना होगा। शाम के पांच बजे से रात के सात बजे तक और रात के सात और आठ बजे के अंदर मुसाफिरों की डाक्टरी जांच का इंतजाम किया गया है। सामान की जांच दिन के चार बजे होगी। डाक्टरी जांच ठीक रात के आठ बजे खतम हो जायगी।'

•

हमेशा का यायावर हूं मैं।

बहुत आकर्षित किया विज्ञापन ने मुझे। तबीयत हुई जाकर देखूं क्या हो रहा है, वहां कौन लोग जा रहे हैं, कैसे हैं वे सब !

उस दिन कोई कामकाज नहीं था, चला गया जहाज घाट पर। लगा कि जैसे विदेश के किसी स्थान पर चला आया हूं, कितने आदमी हैं, कितना सामान है ! तरह-तरह के लोग, तरह-तरह की समस्याएं।

चारों ओर घूम फिरकर देखने लगा। लेकिन जहाज पर चढ़ने का मौका नहीं मिल रहा था।

पता नहीं क्यों गया था उस दिन मैं जहाज घाट पर। बीच-बीच में ऐसा काम कर बैठता हूं मैं। जब लिखने-पढ़ने का काम नहीं रहता, जब सिर्फ आराम करने को जी चाहता है, तब सड़कों पर घूमता फिरता हूं। कभी विक्टोरिया मेमोरियल चला जाता हूं, कभी कलकत्ता की किसी बस्ती के जुए के अड्डे में जा पहुंचता हूं। ऐसा भी हुआ है कि किसी-किसी दिन श्मशान में चला गया हूं और वहां का चक्कर लगाया है। ऐसे वक्त अमूमन मामूली पोशाक होती है मेरी। इससे बहुत सुविधा होती है। तब कोई मुझपर गौर नहीं करता, लिहाजा मुझे सबपर गौर करने का मौका मिल जाता है। सबकी बातें तब ध्यान से सुन भी सकता हूं।

एक जगह पहुंचकर देखा कि बहुत भीड़ जमा है। और भीड़ के भीतर कहा-सुनी हो रही है। क्या बात है जानने के लिए करीब जाकर जैसे मैंने झांका, हैरत में आ जाना पड़ा मुझे।

वही वेचू है न हम लोगों का ?

पर उसके पास नहीं जा पा रहा हूं भीड़ के मारे। चारों ओर भीड़ है। सब होड़ लगाये हुए हैं पहले डाक्टरी जांच कराने को।

बड़ा अचरज-सा हुआ।

इसी बेचू से ही तो चिट्ठी मिली है मुझे कल। बेचू ने लिखा था : 'दादा, दो-एक दिन के भीतर लौट आऊंगा, कहकर स्त्री-पुत्र-पुत्री को आपके जिम्मे छोड़कर चला आया था। किन्तु भगवान की क्या लीला है, समझ नहीं पा रहा हूं। मैं पिछले बीस दिन से बेहद बीमार होकर अब वर्दमान सरकारी अस्पताल में बिस्तर पर पड़ा हूं। पता नहीं कब मेरी बीमारी दूर होगी। आप मेहरबानी करके मेरी स्त्री और बच्चों को देखिये, वे कहीं भूखे न मर जायं। मैं ठीक होते ही फौरन आकर आपको इस बोझ से मुक्त करूंगा। आपके इस ऋण को तो मैं नहीं भर पाऊंगा, पर आपके चरणों में अपना मस्तक नवा पाऊंगा, इसी आशा को लेकर यह पत्र समाप्त करता हूं। कष्ट देने के लिए क्षमा मांगता हूं। नमस्कार।'

जो शख्स वर्दमान के अस्पताल में बिस्तर पकड़े हुए है, वह इस जहाज़ घाट पर डाक्टरी जांच के लिए कैसे आ सकता है, समझ नहीं पाया। तब क्या बेचू नौकरी की कोशिश में पोर्ट ब्लेयर चला जा रहा है ?

अच्छी तरह से पहचानने के लिए मैं और सामने चला गया।

अब कोई शक नहीं रहा कि वह बेचू ही है—जिसकी स्त्री-पुत्र-पुत्री मेरी हिफाज़त में हैं।

पास तक पहुंचना मुमकिन नहीं हुआ। फिर भी जितना पास जा सका उतना ही पास जाकर पुकारा, 'बेचू-बेचू⋯'

मेरी ओर देखा बेचू ने। देखते ही डर के मारे फक पड़ गया उसका चेहरा।

दरअसल बेचू ने क्यों वह चिट्ठी लिखी थी, और क्यों वह बिना किसीको कुछ बताये जहाज़ पर सवार होकर चला जा रहा था, इसे मैं पहले नहीं समझ पाया था।

बेचू यानी बेचूलाल प्रामाणिक को बहुत ज़्यादा अरसे से न जानने पर भी काफी अरसे से जानता था।

मैं और बेचू एक ही दुकान से सिगरेट खरीदा करते थे। रास्ते के मोड़ पर थी सिगरेट की दुकान, एक मकान की दीवार के एक बड़े-से आले में। हर रोज़ सुबह दफ्तर जाते वक्त लिया करता था एक पैकेट। दुकानदार पहचानता था मुझे। लगातार पिछले दस बरस से उसी दुकान से सिगरेट खरीदता चला

आ रहा हूं। चुनांचे वह मुझे मेरा पैकेट देकर ही दूसरे ग्राहकों की ओर ध्यान देता था।

इसी तरह एक दिन उस दुकान पर गया था। देखा कि बेचू भी खड़ा है।

पहले उसे सिगरेट न देने से बेचू चिढ़ गया।

बोला, 'मुझे पहले सिगरेट न देकर तुम उन्हें दे रहे हो, जबकि मैं कितनी देर से खड़ा हूं!'

दुकानदार बोला, 'उनकी बात ही अलग है, वे मेरे दस साल के बंधे खरीदार हैं, जानते हैं इस बात को?'

बेचू ने मेरी ओर देखा। दस साल पुराने खरीदार की ओर अच्छी तरह देखा। मैंने भी बेचू की ओर देखा।

फिर दुकानदार से बोला, 'दो, दो, उन्हें ही पहले दो न।'

बेचू बोला, 'नहीं, नहीं, आप ही लीजिए पहले, मुझे कोई जल्दी नहीं है।'

मैं बोला, 'नहीं, तुम पहले आये हो, तुम ही पहले लो भाई।'

आखिर में फैसला हो गया : मैंने ही पहले सिगरेट लेकर दाम चुकाया। इसके बाद जान-पहचान हो गयी।

मैं बोला, 'कहां रहते हो भाई?'

किसी खास मकसद से नहीं पूछा था मैंने। यों ही पूछा था, कुछ न कहना अभद्रता होगी इसलिए।

पर वह शख्स मेरे प्रश्न को सुनकर जैसे एकदम कृतार्थ-सा हो गया।

बोला, 'हम लोगों के रहने का क्या ठिकाना! सिर पर एक छत-भर है बस…'

इसके बाद उसने पास की गली के भीतर एक मकान की ओर इशारा किया। एक सस्ता मेस था वह।

बोला, 'आप कहां रहते हैं?'

अपना पता बताया मैंने भी।

इसके बाद मैं दफ्तर चला गया था। दुकानदार ने शायद मेरे बारे में कुछ बताया होगा। क्या कहा था नहीं जानता। हो सकता है कुछ बढ़ा-चढ़ा के ही कहा होगा। जो मैं नहीं हूं, शायद वही कहा होगा।

एक दिन बेचू एक-ब-एक सीधे मेरे घर चला आया। इतवार था उस दिन।

थोड़ा आश्चर्य हुआ बेचू को देखकर।

बेचू बोला, 'क्या बात है दादा ? कल मैंने आपको नहीं देखा ?'

मैंने कहा, 'कल मैं दफ्तर नहीं गया था, तबीयत ठीक नहीं है...'

बेचू बोला, 'तभी मुझे फिक्र हुई कि दादा को क्या हो गया। अधीर से भी पूछा था कि दादा आज सिगरेट खरीदने नहीं आये।'

अधीर यानी दुकानदार।

अच्छा लग गया बेचू मुझे उसी दिन से—क्योंकि किसीकी तबीयत खराब होने की बात सोचकर उसके घर हाल जानने सब लोग नहीं जाते।

बोला, 'चाय पीओ।'

बेचू दांतों से जीभ दबाकर बोला, 'नहीं दादा, चाय नहीं पीऊंगा मैं...'

बेचू ने बात इस तरह कही जैसे मैंने उसे जहर खाने को कहा हो।

मैंने कहा, 'चाय नहीं पीते हो तुम ?'

बेचू बोला, 'पीता क्यों नहीं, लेकिन अभी मोड़ की दुकान पर से पीकर आया हूं।'

ऐसा आदमी मैंने पहले नहीं देखा था। चाय पीने वाला चाय का लोभ इस तरह संवरण कर सकता है, मैं नहीं जानता था, खास तौर से बेचू जैसा आदमी जो एक मेस में रहता है, दुकान पर चाय पीता है।

उस दिन बेचू ने बहुत देर तक बातें कीं मुझसे। घनिष्ठता थोड़ी और बढ़ी।

इसके बाद अक्सर मुलाकात होने लगी। वक्त मिलने पर सुबह या फिर शाम को भी आता। बहुत तरह के काम की बातें करता। बातें करने का तो मर्ज़-सा है जैसे बेचू को।

मैंने कहा, 'अपनी फैमिली ले आओ बेचू, कितने दिन और रहोगे मेस में इस तरह......'

बेचू बोला, 'फैमिली ले आने पर देस की जायदाद की देखभाल कौन करेगा, दादा ?'

'देस में क्या तुम्हारी बहुत जायदाद है ?'

बेचू कहता, 'धान-चावल, शाक-सब्ज़ी, पोखरा-मछली—सब कुछ तो है। देखभाल न करने पर लोग लूट मचा देंगे।'

मैं कहता, 'तो देश में जब तुम्हारी इतनी सम्पत्ति है तब तुम कलकत्ता के मेस में क्यों पड़े रहते हो ?'

बेचू जवाब देता, 'दादा, यहां क्या यों ही पड़ा हूं ? देश में सब कुछ है,

सिर्फ कैश रुपया नहीं है…'

बेचू की जबान से ही सुना था कि वह नकद रुपयों के लिए ही अटका पड़ा है कलकत्ता में। कोई बंधी नौकरी नहीं करता था वह क्योंकि बंधी नौकरी में उसका मन नहीं भरता था। यह बहुत दिन पहले की बात है। लड़का, लड़की और स्त्री को देश में छोड़कर एक दिन चला आया था कलकत्ता। इसके बाद कभी बड़े बाजार में दलाली की है, और कभी सड़कों पर फेरीवाले का काम किया है। यह सब करके अपनी हालत सुधार ली है बहुत कुछ। देस में रुपये भेजता है और यहां रहकर कमाता है।

बेचू कहा करता था, 'दादा, आपकी दुआ से बैंक में भी अब कुछ इकट्ठा हो गया है। कुछ और हो जाने पर थोड़ी-सी जमीन खरीदूंगा, फिर रहने लायक एक मड़ैया डाल लूंगा। बस, इसके बाद फैमिली ले आकर यहीं रहूंगा। गांव में रहने पर बच्चों की तालीम नहीं हो पाएगी ठीक तरह…'

कुछ अरसे बाद मैंने देखा कि बेचू ने जो कुछ कहा था, किया भी है उसने वहां। अच्छी आय हो रही थी तब। देखा कि कपड़े-लत्ते अच्छे पहनने लगा है। बीड़ी छोड़कर अब हमेशा सिगरेट पीता है।

एक दिन मुलाकात होने पर पूछा, 'क्या हाल है बेचू? लगता है मजे में हो अब।'

बेचू हंसने लगा।

बोला, 'हां दादा, आपकी कृपा से अब कोई कमी नहीं है मुझे!'

'तब शायद जमीन खरीदोगे अब?'

बेचू बोला, 'बेहाला की ओर एक जमीन पसंद की है दादा। दो कट्ठा जमीन है, दक्षिण की ओर रास्ता है, चारों तरफ खुला है।'

'किस हिसाब से मिल रही है?'

'चार हजार रुपये फी कट्ठा। इससे कम पर देना नहीं चाहता।'

मैंने कहा, 'बहुत अच्छा सौदा है, खरीद डालो। बाद में कीमत और भी बढ़ेगी।'

बेचू बोला, 'केवल आपका आशीर्वाद चाहिए, दादा। फिर मुझे फिक्र किस बात की…'

इसी तरह धीरे-धीरे बेचू ने मेरा विश्वास अर्जन किया था। जब भी वह आता था बड़े विनम्र भाव से अपनी आर्थिक उन्नति की बात सुनाता था। और मैं भी उत्साहित किया करता था उसे।

आखिर वह ऐसा करेगा इसका कतई गुमान नहीं था मुझे।

एक दिन ऐसा हुआ कि बेचू मेरे यहां फिर आया।

बोला, 'दादा, आपके मकान के पीछे एक कोठरी खाली पड़ी है, उसे मुझे दे दीजिये रहने को…'

मैंने कहा, 'मेरे मकान के पीछे कहां है खाली कोठरी ?'

'क्यों, वह जो गली से दिखलाई पड़ती है, कोठरी ही तो है वह।'

मैं बोला, 'वह तो कोयले-उपले रखने की कोठरी है।'

'मेरा काम उसीसे चल जायगा। आपके घर और कोई मेम्बर भी तो नहीं है।'

मैंने कहा, 'फिलहाल मेम्बर नहीं हैं, लेकिन मेरी बहिन वगैरह तो आ सकती हैं, तब क्या होगा ?'

'तब मैं घर छोड़ दूंगा, दादा।'

'छोड़ दोगे ?'

बेचू बोला, 'मकान बनवा रहा हूं न अपना। जब तक मकान पूरा नहीं हो जाता तब तक के लिए अगर आप थोड़ा टिकने की जगह दे दें मुझे तो बड़ा उपकार होगा मेरा। आपको मैं किराया दूंगा, एकदम फोकट में नहीं रहूंगा, दादा।'

आखिर तय हो गया इसी मुताबिक।

एक दिन बेचू देस से स्त्री, लड़का-लड़की ले आकर हाज़िर हो गया। सामान भी था कुछ साथ। सबको लेकर पिछवाड़े की कोठरी में चला गया।

दफ्तर जाने से पहले देखा कि बेचू ने काफी अच्छी तरह जमा लिया है। चूल्हा सुलगाया जा चुका है। कोयले से धुआं निकल रहा है।

जाकर मिला बेचू से एक बार।

बेचू की स्त्री मुझे देखकर घूंघट काढ़कर वहां से हट गयी। लगा कि सुंदर है उसकी स्त्री। दो छोटे बच्चे हैं, लड़का और लड़की।

मुझे देखकर दौड़ा आया बेचू। गमछा पहने तब वह भीतर कुछ कर रहा था। बोला, 'अरे दादा हैं, आइए…'

मैं तब दफ्तर जा रहा था। लिहाजा रुक नहीं सकता था अधिक समय। तो भी बिलकुल न रुकना भी उचित नहीं था।

मैंने कहा, 'मैं भीतर नहीं आऊंगा। यों ही चला आया देखने कि कोई असुविधा तो नहीं हो रही है।'

'अरे कहां हो ? यह देखो दादा आये हैं ''कहां चली गयी ?'

बेचू वहीं से अपनी स्त्री को पुकारने लगा।

छोटी-सी तो कोठरी है, उसमें से बेचारी स्त्री जायगी कहां ? वह पास ही घूंघट काढ़े चुपचाप खड़ी थी। छोटा बच्चा और बच्ची मेरी ओर देख रहे थे अचरज में।

'चुपचाप खड़ी क्यों हो जी, देखो न, कौन आया है।'

फिर मेरी ओर मुखातिब होकर बोला, 'बहुत अच्छा घर है। कोई असुविधा नहीं है हमें।'

असुविधा न हो तो ही अच्छा।

और अपने मन में सोचा कि बेचू ज्यादा दिन तो रहेगा नहीं। अपना मकान तैयार होते ही चला जायगा। इस दरमियान जितने दिन रहना है, रहे।

इसके बाद मैं दफ्तर चला गया।

जिन्दगी में मैंने किस्म-किस्म के आदमी देखे हैं। लिहाजा मेरी धारणा थी कि मैं आदमी पहचानता हूं। बेचू मुहल्ले के ही एक मेस का बाशिंदा था। सुबह से शाम तक दलाली करके दो पैसे पैदा करता था।

बेचू कहता, 'आमदनी तो अच्छी ही होती है दादा, लेकिन रुपये बचा नहीं पा रहा हूं'''

मैंने कहा, 'तुमने जब परिवार की जिम्मेदारी ली है अपने ऊपर तब यह कहने से तो काम चलेगा नहीं, रुपये बचाने ही पड़ेंगे तुम्हें।'

बेचू ने कहा, 'सिर्फ दलाली से ही तो रुपये नहीं आते। देस की जमीन-बाग-पोखरे की भी तो आमदनी है, और इसकी अदायगी के लिए तो वहां जाना ही पड़ेगा'''

मैं बोला, 'जाना वहां भी, बीच-बीच में जाकर ले आना रुपये।'

बेचू बोला, 'अकेला आदमी दोनों ओर कैसे देख सकता है ?'

तभी मैंने पूछा, 'तुम्हारे मकान का क्या हुआ ?'

बेचू ने कहा, 'ईंट का भाव पूछने को गया था दादा, एक सौ पच्चीस रुपया हजार बता रहा है'''

'क्या इरादा है, तब ?'

बेचू ने जवाब दिया, 'यस्मिन् देशे यदाचार' —भाव ज्यादा है इसके लिए काम थोड़े रुका रहेगा।'

हर रोज अब बेचू से पहले की तरह मुलाकात नहीं होती है।

मने वाले दो कमरों में मैं रहता हूं। एक सोने का कमरा है, दूसरा रूम। और ढके बरामदे में रहता है मेरा परिचारक, नहीं परिचालक, सच पूछा जाय तो पांचू ही सब कुछ है मेरा। मैनेजर-कुक-भृत्य मिला-सब कुछ, वही मेरा मालिक है और मैं उसके अधीन हूं।

मेरे यहां सपरिवार बेचू का चला आना पसन्द नहीं किया पांचू ने। हमारा नल-बाथरूम आंगन की ओर था। बेचू की स्त्री और बच्चों के आने पांचू की आज़ादी में खलल पड़ रहा था। पांचू को मैंने सारी बातें समझा। मैंने बताया कि कुछ ही दिनों के लिए आए हैं ये लोग, अपना मकान बनवा रहे हैं; उसके पूरे होते ही चले जाएंगे फिर। मेरी बातें सुनकर चुप पड़ गया था पांचू। और बेचू ने भी पांचू से कहा था, 'हम लोग तुम्हारे बाबू के यहां हैं इससे कहीं यह मत समझ बैठना कि हम सड़क पर के बाशिन्दे हैं। ईस्ट बेंगाल के रिफ्यूजी नहीं हैं हम। बर्दमान ज़िले में हम लोगों का घर-मकान है। खेत-खलिहान सब कुछ है। यहां कलकत्ता में रोज़ी है, इसीलिए रह रहे हैं। नहीं तो हमें इस सड़े-टूटे घुड़साल में रहने का शौक नहीं चर्राया है कोई।'

पांचू से यह सुनकर मैंने उसे सान्त्वना दी, 'तुम उसकी बातों का कोई खयाल न करो, जो चाहे कहने दो उसे।'

पांचू बोला, 'हमारे यहां ही रहता है और फिर यहां की ही बुराई करता है, यह अच्छा नहीं लगता मुझे।'

मैंने कहा, 'तुम इन बातों का ख्याल न किया करो।'

पांचू ने कहा, 'ख्याल कैसे न करूं, सुनना तो मुझे ही पड़ता है…।'

बहुत समझा-बुझाकर ठंडा रक्खा था मैंने पांचू को। आखिर पांचू भी तो इन्सान है! इतने दिन अकेले वह पूरे मकान पर राज करता आया है, अब वह किसी गैर आदमी की बेकार की बातें क्यों सहने लगा?

पांचू ने एक दिन कहा, 'औरत उतनी खराब नहीं है बाबू, उस बेचू बाबू का ही है सारा कसूर…'

मैंने पूछा, 'क्यों?'

पांचू बोला, 'उसकी औरत कोयला-गोहरी खरीदने के लिए पैसा मांगती बेचू बाबू पैसा नहीं देता। कहता है, उन्हींका कोयला-वोयला लेकर फिलहाल काम चलाओ, बाद में मैं लाकर दे दूंगा उनका कोयला…'

मैंने कहा, 'हमारा कोयला लेते हैं क्या वे?'

पांचू बोला, 'पहले मांगकर लिया करती थी। सिर्फ कोयला ही

आलू-परवल, मसाले वगैरह, अब चुराकर ले जाती है।'

'चुराकर क्यों ?'

पाचू ने कहा, 'हर वक्त तो मैं रहता नहीं हूं घर में। कैसे काम चलेगा मेरा सब समय घर रहने पर ? राशन लाने जाता हूं, सौदा लेने बाजार जाता हूं। आकर देखता हूं कि तरकारी की डलिया में से आलू कम हो गए हैं। उस दिन आकर देखा कि दूध की कड़ाही में आधा दूध ही गायब हो गया है एकदम।'

मैं चुप रहा पाचू की बात सुनकर। कहता भी क्या ? बेचू को देखकर कुछ नहीं पता चलता। सामना हो जाने पर उसकी स्त्री भी बड़े श्रद्धाभाव से घूंघट काढ़ लेती है।

मैं बोला, 'उनकी हालत क्या बहुत खराब है ? क्या ख्याल है तुम्हारा पांचू ?'

पांचू बोला, 'बहुत खराब है बाबू, वह औरत तो एकाध दिन बिना खाए ही रह जाती है।'

'क्यों ? खाती क्यों नहीं है ? तबीयत खराब है क्या ? बुखार-उखार है क्या ? भूख नहीं लगती ?'

पाचू ने कहा, 'नहीं बाबू, राशन के चावल खरीदने के पैसे ही नहीं होते उनके पास।'

'फिर ?'

पांचू ने कहा, 'पहले मैं ही चावल-दाल दे दिया करता था। लेकिन कितने दिन देता ? हमीं लोगों का पूरा नहीं पड़ता। इधर तो अक्सर चावल आता ही नहीं उनके यहां, बाजार से सिर्फ अरवी का शाक खरीद लाते हैं और उसी-को उबालकर खाते हैं।'

लेकिन बेचू को देखकर पाचू से सुनी बातों पर यकीन करने का जी नहीं होता।

देखता कि बेचू अच्छा-भला खा-पीकर पान चबाते-चबाते बाहर निकल रहा है। फिर उसी सिगरेट की दुकान पर जाकर सिगरेट खरीदकर धुआं उड़ाता। मुझे देखते ही विनम्रता से नमस्कार करता।

'निकल रहा हूं दादा, अब···'

और मेरे कुछ कहने के पहले ही कहता, 'चलता हूं दादा रोजमर्रा के गश्त पर···'

इसी तरह कई साल बीत गए। इस बीच न बेचू का मकान बना, न और

कहीं गया वह।

मुलाकात होने पर बेचू कहता कि और ज्यादा देर नहीं है। जल्दी ही काम शुरू कर देगा। लेकिन उसकी 'जल्दी' होती नहीं है।

पांचू से जो खबर सुनता हूं उससे मुझे डर लगने लगता है। आखिर क्या मुझे अपनी आंखों के सामने फाकाकशी से किसीकी मौत देखनी पड़ेगी?

एक दिन बुलाया मैंने बेचू को।

मैंने कहा, 'मुझसे छिपाओ मत कुछ भी, बेचू। सच-सच बताओ, तुम्हारा इरादा क्या है? बड़े नेक खयाल से मैंने तुम्हें अपने मकान में पनाह दी थी जिससे तुम्हारा भला हो। पर तीन साल गुजर गए, अभी तक न तुम्हारे मकान का कोई पता है, न मेरे यहां से तुम्हारे चले जाने के ही आसार नज़र आते हैं। अब असली बात क्या है यह बता दो मुझे!'

मेरी बात सुनकर बेचू जैसे आसमान से ज़मीन पर आ गिरा।

बोला, 'क्यों दादा, यह बात क्यों कह रहे हैं? क्या कसूर किया है मैंने? मैं तो जी-जान से चले जाने की कोशिश कर रहा हूं।'

मैं बोला, 'आखिर वह काम होगा कब?'

बेचू ने कहा, 'मैंने तो आपसे कह ही दिया है दादा, कि जल्दी ही चला जाऊंगा कोई इन्तज़ाम हो जाने पर। एक भी दिन ज्यादा नहीं रहूंगा इसके बाद...'

मैं बोला, 'यह तो मैं तीन साल से सुनता आ रहा हूं। मैं तुमको और नहीं रहने दे सकता यहां।'

बेचू ने कहा, 'लेकिन दादा, मैं तो कोई असुविधा नहीं दे रहा हूं आपको।'

मैं बोला, 'कौन कहता है असुविधा नहीं दे रहे हो? पूछो पांचू से कि हम लोगों को असुविधा हो रही है या नहीं...'

पास ही खड़ा था पांचू। वह बोला, 'आप लोग बिना खाए रहेंगे और हम लोग भरपेट खाएंगे, सबसे बड़ी असुविधा तो यही है हमारी।'

मैंने कहा, 'अगर तुम अपनी बीवी-बच्चों को खाना नहीं दे सकते तो शादी क्यों करने गए? फिर परिवार क्यों बढ़ाया? तुम्हारे दो मासूम बच्चे हैं, उन्होंने क्या कसूर किया है जिसके लिए इतनी तकलीफ दे रहे हो उन्हें?'

एकाएक रो पड़ा बेचू।

हाथ जोड़कर बोला, 'आपको अपनी अंदरूनी हालत तो नहीं बता सकता, दादा। रोजगार की हालत बड़ी खराब है। बड़ी बुरी हालत है बाज़ार की।

ऐसी हालत पहले कभी नहीं हुई थी। बड़े बाजार में खरीदारों की आमद ही नहीं है। लोहे का बाजार बन्द है। लोगों के पास पैसे ही नहीं हैं तो खरीदेंगे क्या, और फिर दलाली कहां से होगी? आप तो नौकरी करते हैं दादा, हम लोगों की हालत का सही अन्दाजा नहीं लगा सकते।'

मैंने कहा, 'इन सब बातों को सुनकर मुझे क्या फायदा होगा बेचू, तुम्हारे मकान छोड़ देने पर ही मुझे राहत मिलेगी।'

आकुल हो उठा बेचू।

इसके बाद थोड़ा रुककर बोला, 'तो और कुछ दिन नहीं रहने देंगे?'

मैं बोला, 'नहीं।'

'तब हम लोग कहां जाएंगे? सड़क पर रहेंगे क्या?'

'तुम लोग जहां तबीयत हो रहो, मुझे क्या?'

'ठीक है।' कहकर बेचू अनिच्छा के साथ उठ खड़ा हुआ। इसके बाद एक बार फिर पीछे मुड़कर बोला, 'तो यही आपका आखिरी फैसला है, दादा?'

मैंने कहा, 'हां।'

बेचू बोला, 'ठीक है, तब यही होगा।' यह कहके बेचू अपने बायें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ से एक घूंसा मारकर चला गया।

उसकी इस हरकत को पांचू ने भी देखा, और मैंने भी।

शुरू में मैं कुछ समझ नहीं पाया था। समझा कई दिन बाद। इधर कुछ दिन से बेचू नहीं दिखलाई पड़ रहा था।

पांचू से पूछा, 'बेचू नहीं नजर आ रहा है, कहां गया, कुछ पता है?'

पांचू ने कहा कि वह भी नहीं जानता कुछ भी।

एकाएक एक घटना घटी एक दिन। हक्का-बक्का बना दिया इस घटना ने। सहसा जैसे जबान बंद हो गई। ऐसी घटना भी सम्भव है क्या? इस युग में सम्भवतः कुछ भी असम्भव नहीं है।

खबर मिली मुझे एक परिचित वकील मित्र से। और इसके बाद ही मेरे नाम नोटिस आया अदालत से। नोटिस में लिखा था कि मैं बेचू उर्फ बेचाराम प्रामाणिक को गैरकानूनी तरीके से मकान से निकाल देने की कोशिश कर रहा हूं। वह मेरा बहुत पुराना किरायेदार है। ज्यादा किराये के लालच से मैं उसे निकाल बाहर करने के लिए उसपर तरह-तरह के जुल्म कर रहा हूं। उसके पानी का नल काट दिया है, बिजली का कनेक्शन काट दिया है, वगैरह। बहुत-से आरोप हैं।

मेरे उस वकील मित्र ने सारी बातें बतायीं मुझे।

उन्होंने पूछा, 'तुम किराया नहीं लेते उससे ?'

मैंने कहा, 'नहीं, गरीब आदमी है, दलाली करता फिरता है। किराया देगा कैसे ?'

'लेकिन किराया न लेना भी जुर्म है।'

मैं बोला, 'तो किसीपर रहम भी नहीं कर पाऊंगा क्या ?'

वकील साहब ने कहा, 'नहीं; कानून कहता है कि कोई भी बाहरी आदमी अगर कई साल तक बिना किराये के रहता है तो मकान का वह हिस्सा उसकी जायदाद हो जाएगी।'

'यह बात !'

'हां, कानून यही है। कितने दिन से है वह तुम्हारे मकान में ?'

बोला, 'करीब तीन साल से।'

वकील मित्र बोले, 'अभी हटाओ उसे, इसी दम—और एक क्षण की भी देर न लगाओ।'

मैंने कहा, 'हटाऊंगा कैसे ? वह तो केस कर चुका है मेरे नाम।'

'तब इतने दिन क्यों नहीं हटाया ?'

उसकी स्त्री है। दो छोटे बच्चे हैं, उनका खयाल करके ही नहीं हटाया था। नहीं तो वह अगर अकेला होता तो कभी का मारकर भगा देता।'

वकील मित्र चिन्तित हो उठे मेरे लिए।

बोले, 'औरत का मामला है न, अगर वह शिकायत कर दे कि तुमने उसकी युवती स्त्री के शील-भंग की चेष्टा की है, तब तो तुम्हारे खिलाफ फौजदारी का मामला आ सकता है।'

त्रस्त हो गया मैं।

बोला, 'तब क्या होगा भाई अब ?'

वकील महोदय बोले, 'देखता हूं क्या किया जा सकता है, दस रुपये दो तुम मुझे। जो कुछ करना होगा मैं करूंगा। लेकिन फरियादी क्या तुम्हारे यहां है अभी भी ?'

मैंने कहा, 'नहीं, अगर वह होता तो भुरता बना डालता मारते-मारते।'

दोस्त ने कहा, 'नहीं-नहीं, खबरदार, इस वक्त मारपीट मत करना। तब तुम्हारे खिलाफ फौरन फौजदारी का मामला बन जाएगा। हरगिज न करना ऐसा काम।'

मैं बोला, 'कोई डर की बात तो नहीं है ?'

दोस्त ने कहा, 'अभी यह कैसे कह सकता हूं ? अदालत का मतलब ही है छिछोरों की जगह। अपनी तबीयत से क्या कभी कोई भला आदमी कचहरी जाता है ? बदमाश, गुण्डे और जुआचोरों की जगह है कचहरी। और वैसे ही चोट्टे हैं ये वकील। अगर उन्हें पता चल गया कि असामी पैसे वाला है तो उससे जोंक की तरह चिपक जाते हैं—'

दोस्त की बात सुनकर डर गया मैं।

दोस्त रुपये लेकर चला गया। जो कुछ करना है वही करेगा अब।

मैंने आंगन की ओर देखा। बेचू की स्त्री आराम से गिरस्ती का काम-काज किये जा रही है। दोनों बच्चों को नहलाकर खिलाने बैठी है। उद्वेग का चिह्न मात्र नहीं है उसके आचरण में।

मैंने पांचू को बुलाया।

कहा, 'जाओ तो पांचू, उनसे जाकर पूछो कि बेचू कहा है, और अगर कहीं गया है तो कब लौटेगा ?'

पांचू गया। जाकर क्या कहा उसकी स्त्री से पता नहीं।

लौटकर बोला, 'मुर्शिदाबाद गए हैं बेचू बाबू।'

'मुर्शिदाबाद ? क्या करने गया है वहां ?'

'यह नहीं बता गए हैं।'

'कब आएगा, यह बता गया है ?'

'नहीं, यह भी नहीं बता गया है।'

अब और क्या करता मैं। दूसरे की भलाई करने जाकर जो झंझट आ पड़ा है सिर पर, उसे सहना ही पड़ेगा। मैंने जो अपराध नहीं किया है उस अपराध का सारा दायित्व माथे पर लादे दिन पर दिन कचहरी जाऊंगा और वकील-मजिस्ट्रेट का शिकार बनूंगा, यही है बीसवीं सदी के पेनल-कोड का सभ्य विधान।

वह जो हो सो हो। जो होने वाला है उसे मैं कैसे रोक सकता हूं ?

मैं मुहल्ले के खास-खास लोगों से पूछता कि मैं कैसे इस झंझट से छुटकारा पा सकता हूं, इसका प्रतिकार क्या है।

मुहल्ले में प्रायः सभी लोग जानते थे कि मैंने बेचू को अनुग्रहवश ही आश्रय दिया है। बहुत-से लोग जानते हैं कि बेचू से मेरा बहुत पुराना परिचय नहीं था। वह मेस में रहता था, बड़े बाजार की खाक छानता फिरता था।

रथीन वावू नाम के एक भले आदमी मेस में वेचू के साथ ही एक ही कमरे रहते थे।

उन्होंने कहा, 'तभी मैंने सोचा था कि आपको मना करूं, लेकिन फिर ोचा कि शायद वेचू सुधर जाय। इसलिए चुप रहा।'

मैंने कहा, 'आजकल आदमी की भलाई करने पर भी अपना सत्यानाश ोता है, इसीका सवूत मिला है मुझे साहव!'

एक शख्स ने कहा, 'अरे साहव, उसे मकान में जगह देने के पहले हमें क वार पूछा तक भी तो नहीं था आपने।'

मैंने कहा, 'दो दिन के लिए आंगन के एक कोने में थोड़ी-सी जगह दूंगा, इस मामूली-सी वात के लिए आप लोगों को क्या पूछता?'

एक आदमी वोला, 'जानते हैं, यह वेचू रोज चोरी-चोरी मेरा हेयर आयल लगाया करता था, एक दिन पकड़ भी लिया था मैंने रंगे हाथ।'

और एक आदमी वोला, 'मेरे तो अव भी साढ़े सात रुपये निकलते हैं उस-पर, जानते हैं! दस साल पहले उधार लिए थे।'

धीरे-धीरे जो सूचनाएं मुझे मिलने लगीं उनसे यही लगा कि उससे इतना हेलमेल करना, अपने घर में आने देना, यही मेरी सवसे वड़ी गलती थी। ऐसे गर्हित चरित्र वाले व्यक्ति से कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहिए था मुझे। वेचू सिर्फ दुष्ट ही नहीं था, झूठा भी परले सिरे का था। जितने दिन मेस में था उतने ही दिन उसने रुपये-पैसे के मामले में गड़वड़ी की है। मेस का सामान खरीदने जाकर हिसाव में हेरफेर किया है।

'साहव, चोरी तक की है वेचू वावू ने, यही है कि हम पकड़ नहीं पाए कभी।'

एक आदमी ने कहा, 'आप कचहरी-वचहरी के झमेले में न पड़ें। कचहरी जाने पर आखिर में यह सावित हो जाएगा कि आप ही दोषी हैं, और वह निर्दोष है।'

रथीन वावू ने कहा, 'वजाय इसके एक काम कीजिए, आधी रात को उसे वीवी-वच्चों के साथ जवरदस्ती घर से वाहर निकाल कर दरवाजा वन्द कर दीजिए।'

सलाह देने वाले आदमियों की कमी नहीं है हमारे इस प्यारे देश में। लिहाजा तरह-तरह की सलाह देने लगे सव। फिर उनमें से कुछ लोग खुश भी हुए मुझे आफत में फंसा देखकर।

इधर मैं किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। कुछ भी तय नहीं कर पा रहा था कि क्या करूं। अदालत में दिन पर दिन, महीने पर महीने मुकदमा चलने लगा। बेचू नहीं था, लेकिन बेचू की तरफ से एक वकील लगातार पैरवी किए जा रहा था मुकदमे की। कब किस बिना पर पेशकार को घूस देकर तारीख डलवा लेता, मुझ जैसे आदमी के लिए यह सब खबर रखना नामुमकिन है। मैं अपने काम देखूं या मुकदमे की पैरवी करूं?

आखिर मे हालत यह हो गई कि मैं बिलकुल हारने के करीब आ गया। अदालत में यह साबित होने ही जा रहा था कि मैं बेचू से हर महीने पचास रुपये बतौर किराये लेता हूं, लेकिन इनकम-टैक्स से बचने के लिए रसीद नहीं देता!

और पानी की तरह रुपया खर्च होने लगा मेरा।

अन्त मे एक अच्छा वकील किया मैंने।

अच्छे वकील का मतलब ही है बदमाश वकील। बदमाश बिना हुए अदालत में न नाम कमाया जा सकता है, न रुपया।

लेकिन और चारा ही क्या था मेरे लिए? कांटे से ही कांटा निकालना था तब। बेचू से लड़ने के लिए मुझे भी बदमाश बनना था।

उसी दिन मुझे पहली बार अहसास हुआ कि दुनिया में भलमनसाहत से बढ़कर और कोई बेवकूफी का काम नहीं।

इसके बाद जब मुकदमा डिस्ट्रिक्ट जज की अदालत में गया तब प्रमाणित हो गया कि केस एकदम झूठा है। लेकिन तब तक मेरे करीब चार हजार रुपये खर्च हो चुके थे। और इसमे भी और बड़ी बात यह हुई कि इस अरसे में मेरी उम्र के पांच साल निकल गए थे।

इसके बाद हुआ इंजेक्शन का झमेला।

यानी अदालत की इजाजत लेकर पुलिस की सहायता से बेचू के परिवार को मकान से खदेड़ देना।

बहुत खटकने लगी यह बात। पिघलने लगा दिल।

पाचू बोला, 'नहीं बाबू, इसमें माया-ममता दिखलाने से काम नहीं चलेगा, पुलिस आकर जब धक्का देकर बाहर निकाल देगी तभी होश दुरुस्त होंगे उनके।'

मैंने कहा, 'मुहल्ले वाले क्या कहेंगे मुझे।'

पाचू ने कहा, 'इन सब बातों को सोचने पर हमें ही धोखा खाना पड़ेगा।

अन्त में शायद हमीं लोगों को चला जाना पड़े इस मकान को छोड़कर किसी किराये के मकान में।'

और उधर उन लोगों की हालत तब और भी शोचनीय बन गई थी। बेचू की स्त्री अक्सर रसोई ही नहीं बनाती थी। खाने का सामान ही नहीं रहता था। दोनों बच्चे भी बिना खाए रहते थे।

मैंने ही पांचू से चावल-दाल भेज दिया। कोयले-उपले, नमक-तेल, सब कुछ दिया। पांचू को बुरा तो लगता, लेकिन आखिर वह भी तो इन्सान है। बड़बड़ाता रहता, कुछ कह नहीं पाता था। आंखों के सामने आदमी के बिना खाए तिल-तिल करके मरने का दृश्य कौन देख सकता है?

सारा इंतजाम जब खतम हो चुका था तब एक घटना घटी।

अगले ही दिन भोर के समय पुलिस आने वाली थी। उन सबको मकान से निकाल देने के लिए। इसके ठीक पहले दिन एकाएक बेचू आकर हाज़िर हो गया, न जाने कहां से।

एकदम पैरों पर लोट गया आकर।

बोला, 'मुझे मारिए दादा, मुझे मार डालिए।'

गुस्से से मेरा सारा बदन जल रहा था। जी में आया कि जूते मारकर बेचू का चेहरा बिगाड़ दूं।

लेकिन गुस्सा बड़ी बुरी चीज़ है। गुस्से से इन्सान हैवान बन जाता है। इसीलिए तबीयत पर जब्र करके किसी तरह अपने को संभाल लिया।

मैंने कहा, 'मैं तुम्हारी शक्ल नहीं देखना चाहता हूं बेचू, मेरे सामने से फौरन दूर हो जाओ तुम।'

बेचू ने कहा, 'आप जो कहेंगे दादा, मैं वही करूंगा। आपको शक्ल दिखलाने की लियाकत अब नहीं है मुझमें।'

'तुम्हींने आखिर मेरे खिलाफ झूठा मुकदमा चलाया! यही था तुम्हा[illegible] मन में?'

बेचू चुपचाप रोने लगा मेरे पैरों पर सिर रखकर। उसके आंसुओं से मे[illegible] पैर भीगने लगे।

मैं अपने पर और काबू न रख सका।

पैरों को हटाते ही उसका सिर सीमेंट के कड़े फर्श पर आ गिरा। तो वह उसी तरह पड़ा रहा वहां।

मैंने कहा, 'इस तरह पड़े रहने से काम नहीं चलेगा। कल सवेरे पु[illegible]

आएगी। बताओ, तुमने मुझपर झूठा मुकदमा क्यों चलाया ?'

बेचू ने कहा, 'यकीन कीजिए दादा, कगाली नष्ट कर देती है मति को, मेरे साथ भी यही हुआ है। मेरी नौकरी-चाकरी कुछ भी नहीं है। और कोई चारा न देखकर मैंने आप जैसे शरीफ आदमी को तग किया। मेरे पाप का अन्त नही, नरक जाने पर भी इसका प्रायश्चित नही होगा।'

मैं बोला, 'इन बेकार की बातों में मुझे बहलाने की कोशिश न करो, मेरे सामने से चले जाओ।'

बेचू बोला, 'दादा, जो आपकी तबीयत आए कहिए मुझे। मेरी बीबी और बच्चों पर रहम खाकर आप इस बार मुझे माफ कर दीजिए, नहीं तो मैं आपके सामने ही जहर खाकर मर जाऊगा।'

मैं बोला, 'आखिर तुम चाहते क्या हो ? क्या तुम चाहते हो कि बीवी-बच्चों को लेकर मेरे ही यहा रहो बिना किराये के और मेरे ही खिलाफ मुकदमा चलाओ ?'

बेचू ने कहा, 'दादा, मुझे सिर्फ एक और चांस दीजिए।'

'किस बात का चास ?'

'वर्दमान में मैं अपनी जगह-जमीन बेचकर आपका सब उधार पूरा कर दूगा, इसके बाद आपका मकान छोड दूगा। आपने इतने दिन हमें बरदाश्त किया है तो कुछ दिन और बरदाश्त कीजिए। यही मेहरबानी कीजिए मुझ पर, मैं और कुछ नही चाहता।'

मैं बोला, 'तुम अपना वायदा पूरा करोगे इसकी क्या गारंटी है ?'

बेचू ने फौरन जवाब दिया, 'अगर मैं अपना वायदा पूरा न करूं तो मुझे आप गिन-गिनकर सौ जूते लगाइए।'

मैंने भी मन ही मन सोचा कि इसके बाद मैं कर ही क्या सकता हू। मैं अगर बेचू के बीवी-बच्चों को रास्ते मे निकाल दू तब भी क्या उन्हें शांति मिलेगी ? फिर बेचू की बदमाशी का नतीजा उसके बेगुनाह बच्चे क्यों भोगें ? उन्होंने क्या कसूर किया है ?

मैं समझ गया कि बेचू के बेहाला मे जमीन खरीदने की बात भी झूठी है। धोखाधड़ी है सब। मुझे अब तक धोखा ही देता आया है वह।

मैंने कहा, 'कब तक लौटोगे तुम जगह-जमीन बेचकर ?'

'मुझे सात दिन का और समय दीजिए दादा। सात दिन के भीतर मैं सब कुछ बेच-बाचकर लौट आऊंगा। फिर एक पान-बीड़ी की दुकान खोल लूगा

ा में।'
ं बोला, 'तुम्हारी जो तबीयत में आए सो करना, उससे मुझे कोई
ब नहीं। तुम खाते हो या भूखे रहते हो, मैं देखने नहीं जाऊंगा।'
बेचू ने मेरे चरण स्पर्श किए। इसके बाद चला गया। फिर उसने क्या
ा मुझे पता नहीं। सुना कि अगले दिन ही वह भोर की ट्रेन से वर्दमान
ा गया है।

पुलिस का दल सुबह आया। मैंने उन्हें लौट जाने को कहा। पुलिस का
र्चा एक सौ सतासी रुपया मैंने पहले ही जमा कर दिया था कोर्ट में। यह
क़म बेकार चली गयी। जो भी हो, मैंने बेचू को एक आखिरी मौका दिया।
इसके बाद भी अगर वह वादाखिलाफी करता है तब मजबूरन मुझे भी कोई
कड़ा कदम उठाना पड़ेगा।

उस दिन यह प्रसंग वहीं समाप्त हो गया। मैंने सोचा कि सिर्फ सात ही
दिन की तो बात है। देख ही लिया जाय एक हफ्ता!

लेकिन हुआ वही जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। सात दिन बीत
गए, सत्रह दिन बीत गए। सात महीने बीत गए। कोई खबर नहीं मिली
बेचू की।

इधर बेचू के बीवी-बच्चों के मुंह का कौर जुटाता रहा मैं, उनकी उपेक्षा
नहीं कर पाया।

उनके मारे पांचू के भी नाक में दम आ गया। बोला, 'बाबू, तभी कहा
था मैंने इन्हें निकाल बाहर करने को, अब क्या किया जाए इस पाप का?'

पांचू ज़ुबान से तो ज़रूर इस तरह कहता था, लेकिन करता उनका सब
कुछ था। रसोई बना देता था, ज़रूरत पड़ने पर दोनों बच्चों को नहला तक
देता था। फिर उनको डांटता-फटकारता भी।

और मैं? आजिज़ आकर मैंने इसपर गौर करना छोड़ दिया था। न जाने
कहां का एक अदना आदमी अपने परिवार का सारा बोझ मुझपर लादकर
रफूचक्कर हो गया और मुझे आजीवन उस दायित्व का वहन करना पड़ेगा।
यही बदा था शायद मेरी किस्मत में। कैसे छुटकारा मिलता मुझे इससे?

लेकिन एक दिन एक चिट्ठी मिली बेचू की। उसने लिखा है कि एक क
और लम्बे अरसे तक चलने वाली बीमारी में गिरफ्तार वह वर्दमान के
अस्पताल में पड़ा है। उसकी इस हालत का ख्याल करके मैं बुरा न मानूं
उसके बीवी-बच्चों की परवरिश करूं। भगवान भला करेंगे मेरा। चि

अन्त में लिखा है कि दो-एक दिन में ही आ रहा है वह। जगह-ज़मीन-भाड़े, जो कुछ थे उसके, सब बेच चुका है। आकर वह मेरा सब ऋण चुका देगा। मैंने जब इतने दिन इन्तज़ार किया है तो कुछ दिन और करूं। वगैरह, वगैरह…

चिट्ठी पाकर समझ में नहीं आया कि क्या करूं। बेचू की बात पर यकीन करूं या न करूं। कुछ नहीं तय कर पाया। तब सब वस्तुओं पर से मेरा विश्वास हट गया था।

वास्तव में संसार पर ही मेरी आस्था शिथिल होती जा रही थी क्रमशः। मानव-समाज से प्रारम्भ करके राष्ट्र, सरकार, कोर्ट-कचहरी, अर्थ, परमार्थ-सब पर से आस्था खो रहा था। लिहाज़ा इस चिट्ठी को भी कोई महत्त्व नहीं दिया मैंने।

और हस्बमामूल इसके बाद भी एक साल बीत गया। एक साल और बीतने को हुआ। इस दरमियान बेचू की स्त्री भी हमारे घर की सदस्य बन गयी। एक ही चूल्हे पर सबकी रसोई बनने लगी। बच्चों को मुहल्ले के एक स्कूल में भरती कर दिया। लेकिन जिस तरह मैं हमेशा से गिरस्ती चलाता आया हूं, उसी तरह गिरस्ती से अनासक्त भी बना रहा हूं। कभी मैंने बेचू की स्त्री को न कुछ कहा, न उससे कुछ पूछा। उसके पति की प्रवंचना के लिए कभी कोई उलाहना भी नहीं दिया।

मैंने पूछा, 'इसके बाद क्या हुआ ?'

भले आदमी बहुत देर से सुना रहे थे यह कहानी। बोले—देखिए साहब, बहुत पुराना है यह मेरा लिखने का शौक। घर में बैठे-बैठे वक्त मिलने पर विभिन्न विषयों पर कहानियां लिखा करता हूं। हालांकि मेरी यह कहानियां छपती नहीं हैं कहीं भी। छपवाने की कोई खास चेष्टा भी नहीं करता। लेकिन जब कभी मौक़ा मिलता है, इसी सिलसिले में मानव-चरित्र के अध्ययन की दृष्टि से जगह-जगह घूमता-फिरता हूं। पर तब मुझे कहां पता था कि मेरे घर में ही कहानी मौजूद है।

उस दिन जहाज घाट पर भी गया था मानव-चरित्र के अध्ययन की प्रेरणा से। वहां बेचू को देखकर हैरत में आ गया।

फिर छलांग मारकर उसके सामने पहुंचकर उसका हाथ पकड़ लिया।

'बेचू !'

बेचू भी मुझे देखकर चौंक पड़ा। पकड़े जाने की ग्लानि से एकदम सन्न
ड़ गया।

मैंने पूछा, 'कहां जा रहे हो? आओ…' कहकर उसे खींचते-खींचते बाहर
ले आया।

बोला, 'तुमने सोचा था मेरी आंखों में धूल झोंककर सीधे पोर्ट ब्लेयर
भाग के जान बचाओगे। चलो, घर चलो।'

बेचू ने कहा, 'दादा, मुझे आप चालीस जूते लगाइये, पर छोड़ दीजिए।
पोर्ट ब्लेयर में एक नौकरी मिल गयी है मुझे, इस मौके को गंवा देने पर मुझे
क्या फिर मिलेगी नौकरी?'

'लेकिन तुम्हारे बर्दमान की जमीन-जायदाद के रुपयों का क्या हुआ?'

बेचू चुप रहा। मेरी बात का कोई जवाब नहीं दे सका।

उसी हालत में खींचते हुए मैं उसे घर ले आया। सचमुच बड़ा कमजोर
हो गया था वह। मेरे साथ चलते-चलते लगा जैसे हांफ रहा हो। पर उसने
अपने व्यवहार से ही मेरी दया-ममता-सहानुभूति को खोया है। ऐसी परि-
स्थिति में फिर उसपर दया करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

घर ले आकर मैंने बेचू से कहा, 'जाओ, अपनी बीवी-बच्चों को लेकर
अभी मेरे मकान को छोड़कर चले जाओ। इसके बाद चाहे पोर्ट ब्लेयर हो,
अन्दमान हो, जहन्नुम हो—जहां तबीयत हो चले जाना, मैं कुछ नहीं कहने
जाऊंगा। खैरियत इसीमें है कि तुम दूर हो जाओ यहां से…'

बेचू घर के भीतर चला गया।

तीन साल बाद पति-पत्नी में मुलाकात हुई। मैंने सोचा कि थोड़ा मौका
मिलना चाहिए उन्हें आपसी विचार-विनिमय का। बहुत दिन बाद बच्चे
भी मिले हैं बाप से। शाम तक भी अगर चले जाएं तो भी अच्छा। और नहीं
तो ज्यादा से ज्यादा कल सुबह तक रहें यहां। रात को बाल-बच्चों को लेकर
कहां जाएगा?

बेचू को घर के भीतर दाखिल कराकर मैं अपने पढ़ने के कमरे में आकर
बैठ गया।

एकाएक पांचू आया मेरे कमरे में।

मैं बोला, 'क्या चाहते हो, पांचू?'

पांचू ने कहा, 'मैं कुछ नहीं चाहता बाबू, बेचू बाबू की स्त्री आपसे मिलना
चाहती है।'

'बेचू की स्त्री ? मुझसे मिलना चाहती है ? क्यों ?'

पांचू को पता नहीं इसका। इसके बाद पांचू का इशारा पाकर घूंघट काढ़े बेचू की स्त्री मेरे पैरों पर आ गिरी।

मैंने कहा, 'क्या हुआ ? चले जा रहे हो न तुम लोग ?'

स्त्री बोली नहीं कुछ। उसी तरह पैरों पर सिर टिकाये रोती रही चुपचाप।

बड़ा संकुचित होने लगा मैं मन ही मन। अपने पैरों को खींच भी नहीं ले पा रहा था। इतनी मजबूती से पकड़े हुए थी वह उन्हें।

मैं बोला, 'मैं अब और तुम लोगों को अपने यहां नहीं रहने दूंगा। जहां तुम लोगों की खुशी हो, चली जाओ। तुम्हारे पति को मैं पकड़ लाया हूं, अब मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं रही। बस जाओ।'

लेकिन तो भी उठी नहीं वह औरत। उसी तरह पड़े-पड़े धीमी आवाज में बोली, 'मुझे बचाइए आप। मैं उसके साथ नहीं जाऊंगी।'

'नहीं जाओगी, मतलब ? अपने पति के साथ नहीं जाओगी तो और किसके साथ जाओगी ?'

उस औरत ने उसी तरह नीची आवाज में जवाब दिया, 'वह मेरा पति नहीं है।'

हैरत में आ गया मैं।

'पति नहीं है ! बेचू तुम्हारा पति नहीं है ? तब कौन है वह ?'

आराम से पीठ टेके हुए बैठा था मैं कुर्सी पर, सीधा तनकर बैठ गया अब।

बोला, 'क्या कहा तुमने ? तुम्हारा पति नहीं है ?'

औरत बोली, 'नहीं।'

'नहीं का क्या मतलब ?'

औरत ने कहा, 'वह मेरा कोई नहीं है।'

'कोई नहीं है ?'

बड़ा रहस्यजनक लगा उस औरत का व्यवहार मुझे। इतने दिन बाद क्या कह रही है यह औरत।

'तब ये दोनों बच्चे भी नहीं हैं बेचू के ?'

'नहीं !'

स्तंभित हो गया मैं। इतने दिन तक मानव-चरित्र का गहरा अ करके अन्त में अपने ही घर में इतनी बेवकूफी कर बैठा ?

पांचू से मैंने पूछा, 'क्या मामला है वताओ तो ? तुम कुछ जानते हो ?'
पांचू वोला, 'जी, मैंने पूछा था इनसे। ये वेचू के वड़े भाई की स्त्री है।
'तो वेचू के दादा कहां हैं ?'
पांचू ने कहा, 'एक खून के मामले में काले-पानी की सजा हो गयी है उन्हें।
'अच्छा !'
पांचू ने कहा, 'तव से वेचू वावू पर आ पड़ा है भाभी का भार। आदत से ही आवारा है वह, वेकार इधर-उधर घूमना ही काम रहा है उसका। एका-एक भाभी की ज़िम्मेदारी सिर पर आ पड़ने से वहुत मुसीवत में पड़ गया है।'

•

'इसके वाद ?'
भले आदमी ने कहा, 'इसके वाद और क्या होता ? जैसे कहानी का अंत होता है, जीवन का भी तो अंत होता है। फिर मैंने उस स्त्री और उसके वच्चों का खयाल करके वेचू को एक नौकरी दिलवा दी। उसने अव अलग एक मकान ले लिया है किराये पर, वहीं उसने अपनी भाभी और भतीजों को रखा है।'
कहानी खतम करके भले आदमी वोले, 'यादवपुर के वाज़ार के पीछे एक कम किराये पर का मकान मिल गया है वेचू को। मैंने मकान-मालिक को गारण्टी दी है। और जितने दिन वेचू के दादा सज़ा काटकर काले पानी से वापस नहीं आ जाते उनकी ज़िम्मेदारी से भी वरी नहीं हो सकता मैं।'
चुप हो गए भले आदमी।

•

यह तो हुई मामूली दर्जे के एक आदमी की मिसाल। यानी जिसके न चूल्हा है न चक्की, एक वोट ज़रूर है। लेकिन यही सव नहीं हैं। और भी एक दर्जा है आदमियों का जो ऊंचा है इनसे। इनमें से हरएक का वोट तो एक ही होता है, पर रोवदाव में पांच के वरावर होता है वह। वड़ी शक्ति होती है इन लोगों में, पृथ्वी कांपती है इनके पदचाप के नीचे। आते-जाते ये लोगों से सलाम की ख्वाहिश करते हैं। इनका कभी विनाश नहीं होगा, ध्वंस नहीं होगा। ये लोग भी अपने प्रयत्न से आत्मरक्षा करके जीवित हैं और हमेशा जीवित भी रहेंगे। इनको कभी मैंने दूर से देखा है। कभी वेहद करीव से। लेकिन इनको पहचानने में कभी गलती नहीं की है मैंने। अपरिसीम उदासीनता होती है इनकी मनुष्यों के प्रति, पर आवश्यकता पड़ने पर वड़ा लगाव भी हो जाता है उन्हीं मनुष्यों से इनका।

लेकिन धरती इनके लिए भी उतनी ही बेरहम है जितनी हमारे-आपके लिए। इस बेरहम धरती की छाती पर किसी तरह जमे रहने की ख्वाहिश में ही ये कभी उदासीन हो जाते हैं, कभी दयावान। कभी आदमियों की हिमायत करते हैं, कभी खिलाफत। जैसे भी हो, इन्हें टिके रहना ही पड़ेगा। नहीं तो यह धरती बनी ही क्यों है?

(अब इन्हीं में से एक शख्स की कथा कहता हूं:)

द्वितीय

पार्क के पास से गुजर रहा था। इस मुहल्ले में आने के बाद इस पार्क के पास होकर ही मुझे आना-जाना पड़ता था। देखा जाय तो और कोई रास्ता भी नहीं था इसके अलावा।

एकाएक माइक्रोफोन की आवाज़ आई कान में।

कोई भाषण दे रहा था। बड़ा गरमागरम था भाषण। चुनाव का प्रचार चल रहा था। करीब ही था चुनाव का दिन। इसीलिए मुहल्ले-मुहल्ले में, पार्क-पार्क में सभाएं हो रही हैं।

लोगों की अच्छी-खासी भीड़ जमा हो जाती है इन सभाओं में।

और लोगों की बात आने पर हमारे मुहल्ले के नाटक की बात याद आ जाती है। कुछ लोग रक्खे जाते थे विंग्स के पास। उनका काम था नारा लगाना। कभी 'हर हर महादेव' का ज़ोर-ज़ोर से नारा लगाते थे, कभी 'अल्ला-हो अकबर' का।

इन्हें ही कहते हैं 'लोग'—हमारे देश की जनता। ये ही लोग कांग्रेस की मीटिंग में भी जाकर भीड़ लगाते हैं, फिर कम्यूनिस्टों की मीटिंग में भी। इनके लिए मीटिंग का मतलब मीटिंग ही होता है।

रोज़मर्रा की तरह मैं चला ही जा रहा था। एकाएक वक्ता के गले की आवाज कान में आयी। मौसा जी बोल रहे हैं न ?

रुक गया। मेरे वही मौसा जी थे। एक जमाना था जब पोस्ट मास्टर जनरल के पद पर थे। कितनी गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे तब !

लोग कहते थे, 'पी० एम० जी० हैं तेरे मौसा जी ? तेरे सगे मौसा हैं ?'

मैं किसी तरह उन्हें यकीन नहीं दिला पाता था कि हो सकता है मैं गरीब हूं, लेकिन अमीर पी० एम० जी० जगदीश मुकर्जी—यानी पोस्ट ऑफिस की दुनिया के मुकर्जी साहब का सचमुच मेरे मौसा होने में क्या बाधा है।

मेरी मां की सगी बहन के साथ शादी हुई थी मुकर्जी साहब की। पर तब हम लोगों की जो हालत थी उसे देखकर किसीका इस बात पर यकीन न करना ही मुनासिब था।

वे कहते, 'पी० एम० जी० अगर तेरे सगे मौसा हैं, तो वे अपनी साली के

लड़के को एक नौकरी क्यों नहीं दिलवा देते ?'

बात तुक की थी। सचमुच मेरी मा के अपने बहनोई थे। और उसी मां का बेटा, मैं, तब बेकार था। एक अदनी-सी नौकरी के लिए लोगों के दरवाज़ों का चक्कर लगाता फिरा हू। किसीने उम्मीद नहीं दिलाई थी तब, न किसीने ढाढ़स बधाया था, न तसल्ली दी थी। यहा तक कि इन्ही मौसाजी जगदीश मुकर्जी ने एक सार्टीफिकेट तक देने में इन्कार कर दिया था।

क्यो ? इसलिए कि मैं कांग्रेसी हू।

और आज वही मौसाजी नौकरी से रिटायर होकर चुनाव लड रहे हैं। पार्क में खड़े होकर भाषण दे रहे है। हज़ारों आदमियों की भीड में खड़े होकर देशसेवा की बातें कह रहे हैं।

अजीब-सा लगा सोचने में।

बचपन की बातें याद है। मा से मौसीजी की बातें सुनता था। कभी-कभी उत्सव-अनुष्ठान के मौकों पर जाता भी था मा के साथ उनके यहा। किसीको भी पहचानता नहीं था तब। पर इतना जरूर समझ जाता था कि ये लोग बडे आदमी है। छोटे-छोटे मौसेरे भाई-बहनों के कपडे-जूते हमारे कपडे-जूतों से कहीं अच्छे होते थे। हम लोग उनके घर जाते तो थे, पर वहा जाकर हमे सकुचित बने रहना पडता था। लगता था जैसे हम अवाछित हैं, बिना बुलाये आ गए हैं।

मन ही मन गुस्सा आ जाता था मा पर।

मां को कहता, 'मा, तुम्हारी भी ऐसे ही किसी बडे आदमी के घर शादी क्यों नहीं हुई ?'

मां हंसती थी। कहती 'धत्, ऐसी बात नहीं कहा करते।'

मैं कहता, 'तुम्हारी अगर किसी बडे आदमी के घर शादी होती तो हम लोग भी अच्छे-अच्छे कपड़े पहन सकते, सब हम लोगों की भी खूब खातिर करते, हम लोगों के मकान के सामने भी उसी तरह का एक बडा फूलों का बाग होता।'

तब मौसाजी के सामने जाने की हिम्मत नहीं होती थी हम लोगों की। एक तो ये पोस्ट मास्टर जनरल, बहुत बड़े अफसर, तिसपर प्रकृति के गंभीर। जब पास से गुज़रते थे, हम लोग डर के मारे दूर हटके उनके लिए रास्ता छोड़ देते थे।

लेकिन मौसीजी हमारी बडी खातिर करती थीं। मेरी मां की बड़ी बहन थीं। हमारे जाने पर खुश होती थी मौसीजी। मेरी मां को नाम लेकर

थीं। मां का नाम था पंकजिनी।
मीजी कहतीं, 'पंकजिनी का बड़ा लड़का बहुत अच्छा है।'
कर मेरी ओर देखकर कहतीं, 'क्यों रे, आज हमारे यहां रहेगा ? कल
ा दूंगी तेरी मां के पास। रहेगा ?'
रहने की तबियत तो बहुत करती थी। लेकिन संकोच भी होता था मन में।
मकान की तरह सहज भाव नहीं आ पाता था मौसाजी के घर। वहां
ार, सामान-असबाब वगैरह इतना साफ-सुथरा और सजा-संवरा रहता
कि फर्श पर चलने में ही संकोच होता था। कहीं गंदा न हो जाय फर्श,
हीं कोई चीज टूट न जाय, कहीं दाग न लग जाय किसीमें।
पर उत्सव-अनुष्ठान के मौके हर रोज तो आते नहीं थे। लिहाजा मौसाजी
ौसीजी से कभी-कभार ही मुलाकात होती थी। अर्थात् पांच-छै साल में ए
या दो बार।
यह वह युग था जब आत्मीय-स्वजन से मनुष्य का स्नेह-प्रीति का सम्बन्ध
अटूट था। लोग मौका मिलते ही अपने सगे-सम्बन्धियों से मेल-मुलाकात करने
जाते थे। पारस्परिक आना-जाना चलता था।
पर हम लोगों की बात ही अलहदा थी। मौसी-मौसा और हमारी हालत
में इतना ज्यादा अंतर था कि उनके यहां जब खुशी होती तब हम नहीं आ-जा
सकते थे। उनका मकान एक अभिजात इलाके में था, और हमारा एक गरीबों
के मुहल्ले में। हम लोग जब स्कूल में पढ़ते थे तब किसकी कैसी हालत है, इस
बात पर गौर नहीं करते थे। मित्रता पर आर्थिक दशा के भेद का कोई प्रभाव
नहीं पड़ता था।
यह शुरू हुआ थोड़ा और बड़ा होने पर। जब यह भेद समझना शुरू किया
मैंने तब काफी बड़ा हो गया था। तब पढ़ाई खतम करके नौकरी की कोशिश
में दर-दर की खाक छान रहा था।
मौसाजी थे पी० एम० जी०। पोस्ट मास्टर जनरल। चाहते तो ए
नौकरी जरूर दिलवा सकते थे।
बहुत जगहों का चक्कर लगा चुका था तब। सब सिर्फ एक ही बात क
करते थे : 'बड़ा खराब वक्त है, नौकरी खाली नहीं है कहीं।'
हालांकि यह बात नहीं थी कि किसीको नौकरी न मिलती हो। मु
के आसपास के दो-एक लड़कों को नौकरी मिल भी गयी थी। कैसे उन्हें नौ
... मुझे नहीं पता। नौकरी पाना कितना कठिन है, इसे तब मैंने ि

अच्छी तरह समझा था, उतनी अच्छी तरह बाद में कभी नहीं समझा।

उन्हीं दिनों एक दिन पिताजी ने कहा, 'अपने मौसाजी के पास एक दिन क्यों नहीं चले जाते ?'

मैं बोला, 'मौसाजी मुझे नहीं पहचानते।'

पिताजी ने कहा, 'क्यों, अभी तो उस दिन सुबोध बाबू की लड़की की शादी में गए थे, तब मुलाकात नहीं हुई थी क्या ?'

मैंने कहा, 'मुलाकात हुई थी, लेकिन बात नहीं हुई।'

'बात न भी हुई हो तो क्या हुआ, प्रणाम तो किया था न उन्हें ?'

बोला, 'नहीं, प्रणाम नहीं किया था।'

पिताजी मन ही मन अप्रसन्न हुए।

जबान से बोले, 'यही तुम लोगों की सबसे बड़ी गलती है। कितने गण्य-मान्य व्यक्ति हैं, उन्हें प्रणाम करने में क्या बुराई है ? तिसपर जब वे इतने बड़े अफसर हैं।'

मैं सिर नीचा किये अपराधी की तरह खड़ा रहा।

पिताजी फिर कहने लगे, 'तुम लोग आजकल के लड़के हो, ठीक तरह बड़ों की इज्जत करना नहीं सीखे हो। उस दिन तुम्हें कहा गुमान था कि नौकरी के लिए एक दिन उन्हींके पास जाना पड़ेगा। उस दिन अगर थोड़ा प्रणाम कर रखते तो आज नौकरी की बात कहने में असुविधा नहीं होती।'

पिताजी हमेशा मुझे अच्छे-अच्छे उपदेश दिया करते थे। उस दिन भी दिया।

मैं पिताजी के सामने अधिक नहीं बोला करता था। मेरा चुप रहना पसंद नहीं करते थे पिताजी कोई खास।

पिताजी कहा करते थे, 'दुनिया को क्या तुम इतनी सीधी जगह समझते हो ? यहां अगर तुम चुप बैठे रहोगे तो कोई फूटी आंखों से भी नहीं देखेगा तुम्हारी ओर। सबके साथ मिल-जुलकर रहना पड़ेगा, सबको प्यार करना पड़ेगा, सबको अपना बनाना होगा—तभी सब तुम्हें तुम्हारी आपत्ति में मदद करेंगे।'

इन बातों का कोई जवाब नहीं होता, तभी मैं जवाब नहीं दिया करता था।

पर बड़ा कष्ट अनुभव करता था मन में।

एक घटना घटी एक दिन। पिताजी के ही एक परिचित मित्र ने मुझे

सेण्ट्रल एक्साइज़ के एक बड़े अफसर चटर्जी साहब के पास भेज दिया।

बड़े सज्जन व्यक्ति निकले चटर्जी साहब। गरीब जानकर उपेक्षा नहीं की मेरी। एक अर्ज़ी भेजने को कहा। किस तरह अर्ज़ी लिखनी होगी उसका भी एक मसौदा बना दिया।

अन्त में बोले, 'लेकिन इसके साथ, बेटा, एक और काम करना पड़ेगा तुम्हें।'

मैंने पूछा, 'क्या ?'

'एक कैरेक्टर सार्टीफिकेट ला सकोगे ?'

'किससे लेना होगा ?'

'किसी फर्स्ट क्लास गवर्नमेण्ट गज़ेटेड ऑफिसर से।'

मैं बोला, 'बिना सार्टीफिकेट के नहीं मिलेगी नौकरी ?'

चटर्जी साहब बोले, 'चारों ओर आजकल कांग्रेस का आंदोलन चल रहा है। कांग्रेसी ट्राम-बस फूंक रहे हैं, बम-बारूद-गोली छोड़ रहे हैं, इसीलिए अब बहुत चुन-चुनकर लिए जा रहे हैं आदमी।'

विनम्रतापूर्वक बोला मैं, 'पर मेरा तो किसी गज़ेटेड अफसर से परिचय नहीं है।'

'सगे-सम्बन्धियों में कोई फर्स्ट क्लास गज़ेटेड अफसर नहीं है ?'

मैंने कहा, 'नहीं'। कहकर ही यकायक मौसाजी का नाम याद आ गया।

बोला, 'ठीक है मैं कैरेक्टर सार्टीफिकेट ले आऊंगा।'

मन में संदेह जरूर था लेकिन सोचा था, कुछ भी हो, हैं तो सगे मौसाजी ही, तब कोई न कोई रास्ता निकल ही आयेगा।

घर आकर पिताजी से कही यह बात मैंने।

पिताजी ने कहा, 'तब अपनी मां से कहकर देखो, वे अगर कोई इंतज़ाम कर सकें।'

मां रसोई में थीं। पिताजी गए उधर। मैं भी साथ-साथ गया।

पिताजी बोले, 'सुनती हो, तुम एक दिन इसे लेकर अपनी दीदी के यहां जा सकती हो ?'

मेरी मां बड़ी सीधी-सादी स्त्री हैं। मां को इन बातों में कभी कोई एतराज नहीं होता। मां की बहनों में आपस में मेल भी बहुत था। बहनें अक्सर मिल भी लेती थीं एक-दूसरे से।

मां ने सब बातें सुनकर कहा, 'ठीक है, चली जाऊंगी, दीदी से कहूंगी।

दीदी जीजाजी से कह देंगी।'

पिताजी ने कहा, 'तुम्हारे जीजाजी की जैसी प्रकृति है, क्या वे सार्टिफिकेट देने के लिए राजी हो जाएंगे ?'

मा ने कहा, 'राजी क्यों नहीं होंगे ? मुझे तो पहचानते हैं जीजाजी। दीदी की शादी के वक्त मैं ही पहले-पहल जीजाजी को पसंद करने गई थी पिताजी के साथ। तब जीजाजी छोटे ओहदे पर थे। दीदी के साथ शादी होने के बाद ही तो धीरे-धीरे तरक्की होना शुरू हुई थी।'

पिताजी ने कहा, 'तब यही तय रहा।'

मा ने कहा, 'मैं जीजाजी से जो कहूंगी वे वही करेंगे—जीजाजी टालेंगे नहीं मेरी बात।'

मैंने सोचा, चलो काम बन गया। पी०एम०जी० अगर सार्टिफिकेट दें तब फिर फिक्र किस बात की !

अगले दिन रविवार था।

रविवार को अवश्य ही घर रहेंगे मौसाजी। मा को भी रविवार को काम कम रहना है। मा खाना बनाकर मुझे लेकर मौसाजी के घर गई।

अमीर आदमियों का मुहल्ला है। थोड़ा टिपटाप बनकर ही गए हम दोनों। मकान के सामने दरवान खड़ा था यथारीति। मां को देखकर कुछ नहीं बोला। भीतर चले गए हम लोग। मां बिलकुल सीधे जनाने में चली गईं।

मौसीजी मा को देखते ही आगे बढ़ आईं।

'अरे पंकजिनी, लड़के को लाई है न साथ ? आ आ, तेरा लड़का कितना बड़ा हो गया है रे !'

बड़ी खातिरदारी हुई हम लोगों की। मां के लिए चाय आई। मेरे लिए रसगुल्ला, सन्देश, समोसा-कचौड़ी।

मौसी जी बोलीं, 'क्यों री, तू लड़के को खाने को नहीं देती है क्या ? इतना दुबला क्यों है यह ?'

मां ने कहा, 'वह क्या घर में रहता है कि उसे खाने को दूंगी ?'

'घर में नहीं रहता ! कहां जाता है ?'

मा ने कहा, 'कहां जाता है, वही जानता है। सुबह थोड़ा-सा नाश्ता करके निकल जाता है, फिर लौटता है दोपहर के एक बजे। तब लौटकर ठंडा भात खाता है। खाकर फिर निकल जाता है।'

मौसीजी ने मेरी ओर देखकर पूछा, 'क्यों रे, कहां जाता है तू इतना ? कहां घूमता रहता है तमाम दिन ?'

मैं बोला, 'हम लोगों का क्लब है, क्लब में दोस्तों से गपशप करने जाता हूं।'

'तो क्या इतनी बातें होती हैं वहां कि तुम्हें खाने तक की याद नहीं रहती ? क्या बातें करते हो तुम लोग ?'

मां ने कहा, 'दिन-रात तो दोस्तों के साथ ही रहता है। दोस्त लोग ही सब कुछ हैं जैसे इसके, हम लोग कुछ भी नहीं ! इसीलिए तो सोच रही हूं कि किसी नौकरी में लगाकर शादी कर दूंगी, तब आटे-दाल का भाव पता चल जाएगा…'

मां के इरादे को सुनकर मौसीजी हंस पड़ीं। बोलीं, 'हां, तुझे भी एक सहारा मिल जाएगा, तू भी और कितने दिन हाथ जलाकर खाना पकाती रहेगी बता।'

मौसीजी जानती थीं कि हम लोग गरीब हैं। इसलिए उनके मन में इस प्रकार की सहानुभूति थी मां के प्रति। सगी बहन हैं, एक ही साथ एक ही मां-बाप के पास एक ही घर में पालन-पोषण हुआ है। लेकिन शादी के बाद एक बहन बन गई अमीर, और दूसरी और भी ज़्यादा गरीब हो गई। ऐसी दशा में एक की दूसरी के प्रति सहानुभूति होना ही स्वाभाविक है। पर मां को मैंने कभी भी मौसीजी से ईर्ष्या करते नहीं देखा।

मैं कहता, 'मां, तुम कुछ भी कहो, है वे लोग घमंडी।'

मां कहतीं, 'क्यों, कहां देखा तूने उनका घमंड ? देखा नहीं तूने कितना हंस-हंसकर बातें करती हैं मेरे साथ।'

मैं कहता, 'तुमसे हंस-हंस के बातें करती हैं तो क्या हुआ, मुझसे तो कोई बातें ही नहीं करता।'

'अरे, यह क्या कहता है ? इतनी तो बातें कीं तुझसे। तुझे रस-गुल्ला, संदेश, समोसा-कचौड़ी—इतना सब खिलाया ! इतना झूठ बोलता है तू।'

सचमुच, मौसीजी की बुराई करने पर मां को बहुत बुरा महसूस होता था। सह नहीं पाती थीं मां मौसीजी की बुराई। पर मैं जानता था, मौसीजी, मौसेरे भाई-बहन सब हमारी हालत पर तरस खाते हैं। वे हंस-हंसकर बातें तो जरूर करते थे, किन्तु लगता था कि उस हंसी के अंतराल में उनका निःशब्द

व्यंग भी है हम लोगों के प्रति। उनके व्यवहार से भी व्यक्त हो जाता था प्रकारान्तर से कि हम लोग गरीब है और वे लोग अमीर।

मौसीजी की वडी लडकी शानू अपनी साडी और गहनो का इस भौंड़े ढग से प्रदर्शन करती थी कि हरएक की नजर उनपर पड जाए।

'यह देख री पंकजिनी, शानू के लिए ये कगन बनवाए हैं, बता तो डिज़ाइन कैसा है ?'

खुशी से फट पडती मा, 'वाह, बहुत बढिया डिज़ाइन है दीदी। किसकी पसन्द है बताओ तो, तुम्हारी या शानू की ?'

शानू कहती, 'मा क्या खाक पसन्द करेंगी, मेरी पसन्द है। मा ने तो डायमण्ड-कट डिज़ाइन पसन्द किया था, अनन्नास वाला यह डिज़ाइन मैंने ही ढूढकर सेलेक्ट किया है।'

विगलित होकर मां भूरि-भूरि प्रशसा करने लगती, शानू की।

कहतीं, 'वाकई दीदी, तुम्हारी शानू बेटी की पसन्द निहायत अच्छी है।'

मुझे लगता, यह खुशामद की बात है मा की। और यह भी मन मे आता चूंकि मौसीजी अमीर हैं तभी मा ऐसे खुशामदी लहजे मे बातें करती हैं उनसे। जैसे उनमें कोई खराबी हो ही नही सकती, जैसे उनका सब कुछ अच्छा है!

घर लौटकर मैं नाराज़ होता। कहता, 'मैं फिर कभी तुम्हारे साथ उनके घर नही जाऊंगा मां, कहे देता हू।'

'क्यो, क्या हुआ ? क्या किया मैंने ?'

'उनका सब कुछ अच्छा है और हमारा सब खराब, क्यो ?'

मा हंसकर कहती, 'हे भगवान्, मैंने क्या कभी यह कहा है कि हमारा सब खराब है ?'

मैं कहता, 'तुम तो खाली उनकी तारीफ ही करती रही। शानू की तारीफ की, मानू की तारीफ की। लेकिन मौसीजी ने क्या मेरी एक भी बार तारीफ की ?'

मां कहतीं, 'अरे, तू इन छोटी-छोटी बातों पर गौर करता है ? बड़ा पगला है, इन बातों पर कहीं गौर किया जाता है ? लोगों की तारीफ करने पर वे खुश होते हैं, नही जानता ?'

'तब क्या तुम बेवजह लोगों की तारीफ करोगी ?'

मां पूछती, 'किसकी तारीफ की मैंने बेवजह ?'

'क्यों, शानू को तुम खूबसूरत कहकर खुशामद नहीं कर रही थीं ? शानू सचमुच खूबसूरत है ? खूबसूरती है किधर उस चपटी नाक वाली लड़की ?'

वाकई शानू देखने में मौसीजी की तरह नहीं थी, बिल्कुल मौसाजी की तरह थी। मौसाजी की भी नाक चपटी थी। इसपर भी बड़ा गरूर था मौसीजी की बड़ी लड़की के मन में।

लेकिन मेरी मां ने इसी लड़की को हमेशा खूबसूरत कहकर उनके प्रिय-पात्र बनने की कोशिश की है। मुझे यह अच्छा नहीं लगता था।

मां कहा करतीं, 'हमेशा लोगों में अच्छाई देखनी चाहिए, उनकी तारीफ करनी चाहिए, इससे वे खुश होते हैं।'

मां का यह सुझाव मुझे कतई पसन्द नहीं था। खास इसी वजह से मौसीजी के घर से मैंने कोई सम्पर्क नहीं रखा था। और मौसीजी तो दरकिनार, किसी उत्सव-अनुष्ठान या शादी के मौके मौसेरी बहिनों से मुलाकात हो जाने पर उनसे बोला तक नहीं हूं। उन्हें दूर से देखकर ही कतरा गया हूं।

और मौसाजी की तो बात ही अलग है।

वे पी० एम० जी० हैं। पोस्ट मास्टर जनरल। उनकी धारणा थी कि उनसे ऊंचे ओहदे की नौकरी दुनिया में किसीने नहीं की।

और इन्हीं मौसाजी के पास अपने एक काम की सिफारिश के लिए जाना पड़ेगा, यह मैंने कभी नहीं सोचा था।

उस दिन जब मैं गया, मां भी मेरे साथ गई थीं।

गेट के भीतर जाते ही यथापूर्व मौसीजी दौड़ी आईं। बोलीं, 'क्यों री, क्या हाल है तुम लोगों का ? आ-आ, बैठ...'

मैं पीछे था। संकोच से सिमटा हुआ।

मां ने कहा, 'दीदी, जीजाजी कहां हैं ? उन्हींके पास आई हूं...'

'क्यों, जीजाजी से क्या काम है तेरा ?'

'इस लड़के के लिए जीजाजी से एक सार्टिफिकेट लूंगी। इसकी नौकरी के लिए चाहिए।'

मौसीजी बोलीं, 'लेकिन जीजाजी तो नहीं हैं रे, वे तो टूर पर च[illegible] हैं।'

'कब लौटेंगे ?'

'परसों।'

मां ने कहा, 'तब तुम्हीं थोड़ा कह रखना दीदी, इस सार्टिफिकेट के मिलने से बड़ी सुविधा हो जाएगी मेरे लड़के को। कितनी जगह कितनी कोशिशें कीं, कितने देवताओं की मन्नतें मानीं, लेकिन कुछ नहीं हुआ। अन्त में बड़ी मुश्किल से एक भले आदमी ने एक नौकरी देने का वायदा किया है। पर एक सरकारी अफसर का सार्टिफिकेट मांग रहे हैं—और जीजाजी भी तो एक सरकारी अफसर हैं दीदी।'

मौसीजी ने वायदा किया कि कहेंगी। मा को भी निश्चय हो गया कि मुझे अब नौकरी मिलके ही रहेगी।

लेकिन चूंकि मौसाजी घर पर मौजूद नहीं हैं, तब चारा ही क्या था। मा ने बार-बार मौसीजी से कहा था, 'तुम कहीं भूल न जाना, जीजाजी को कहना दीदी।'

मौसीजी ने कहा, 'कहती क्या है तू? मैं भूल जाऊंगी? तेरे लड़के की नौकरी की बात क्या मैं कभी भूल सकती हू?'

काम की बात इतनी ही हुई, इसके बाद बेकार की बातें शुरू हुईं। दोनों बहनों में मुलाकात होने पर अन्तरग बातें होती ही हैं।

बाहर आकर मैंने कहा, 'अगले दिन भी तुम्हें मेरे साथ आना पड़ेगा।'

मा ने कहा, 'क्यों, सारी बातें तो मैं बता आई हूं तेरी मौसीजी को। अब डर किस बात का है तुझे? देखा नहीं कितनी खातिर की दीदी ने तेरी।'

मैंने कहा, 'खाक खातिर की! उन्होंने तो अपनी अमीरी ही दिखाई!'

'कहता क्या है रे, कब दिखाई अमीरी?'

मैं बोला, 'क्यों, वह जो ठंडा शरबत पिलाया, वह तो यही जताने के लिए न कि उनके यहां रेफ्रिजरेटर है...'

मां ने कहा 'बड़ी टेढ़ी नजर है तेरी, इतना बढ़िया शरबत पिलाया वह भी नहीं अच्छा लगा तुझे।'

मैंने कहा, 'सिर्फ रेफ्रिजरेटर की ही बात नहीं, उनकी हर बात में दिखावा होता है। हम लोगों को उस कमरे में ही ले जाकर क्यों बैठाया?'

'अरे, यह भी कोई बात हुई? वहीं उनके बैठने का कमरा है।'

मैंने कहा, 'लेकिन वे खुद क्या उस कमरे में सब समय बैठते हैं? वह कमरा तो उसी तरह सजा-संवरा खाली ही पड़ा रहता है। कहीं गन्दा न हो जाए इसलिए वे उस कमरे में नहीं जाते।'

मा ने कहा, 'इसमें क्या हुआ। ठीक ही तो है, ज्यादा इस्तेमाल करने में

र गन्दा हो ही सकता है।'

मां से ज़्यादा बातें करके शक्ति का अपव्यय करने की तबियत नहीं थी तब मेरी। मां इन बातों को नहीं समझती थीं। मेरी मां वास्तव में एक सरल और निष्कपट स्वभाव की स्त्री थीं। हर आदमी की बात पर यकीन कर लिया करती थीं सहज ही में। इस विश्वास-प्रवणता के लिए मां को जीवन में अनेक आघात और कष्ट सहन करने पड़े हैं। हालांकि मौसीजी मां की सगी बड़ी बहन हैं, फिर भी उन जैसी चतुर-चालाक स्त्री मैंने कभी नहीं देखी। शानू और मानू, मौसीजी की दोनों लड़कियां भी उन्हींकी तरह थीं। वे कभी ज़बान से यह ज़ाहिर नहीं करती थीं कि वे अमीर हैं और हम गरीब।

लेकिन किस्मत का खेल कि उन्हीं मौसीजी के घर मुझे जाना पड़ा। और जैसे इस अपमान के प्रतिकार का भी कोई उपाय नहीं था मेरे पास।

उधर चटर्जी साहब से मैंने वायदा किया था कि यथासमय कैरेक्टर सार्टिफिकेट ला दूंगा।

पर सहसा उसी बुधवार के दिन एक दुर्घटना घटी।

अगले दिन अखबार में वह खबर निकली थी। बड़े विस्तार से उसका वर्णन किया था स्टाफ-रिपोर्टर ने। जिस ट्रेन से मौसाजी लौट रहे थे वह अकस्मात् डिरेल हो गई। कई डिब्बे उलट गए। बहुत-से लोगों की मृत्यु हो गई। बहुत-से हताहत व्यक्तियों का नाम-पता छपा था। उनमें मौसाजी का नाम न पाकर घर के लोगों की चिन्ता और बढ़ गई।

दफ्तर से लौटकर पिताजी ने ही सबसे पहले खबर दी। बोले, 'जानती हो, आज बारिशाल एक्सप्रेस का एक्सीडेंट हो गया...'

मां यह खबर सुनते ही रो उठीं।

'हाय राम, यह क्या कह रहे हो? जीजाजी तो इसी ट्रेन से आनेवाले थे।'

पिताजी ने कहा, 'मुझे नहीं पता इसका, लेकिन दफ्तर से लौटते वक्त सुन कि कलकत्ता में टेलिग्राम आया है कि इस दुर्घटना में करीब डेढ़ सौ आदमी मारे गए हैं...'

यह सुनकर मां स्थिर नहीं रह पायीं। जल्दी से रसोई और घर का काम खत्म करके छोटे भाई को साथ लेकर मौसीजी के यहां चली गईं।

वहां भी तब खबर पहुंच चुकी थी। बारिशाल एक्सप्रेस किसी ब्रिज पर उलट पड़ी है। पोस्ट ऑफिस से टेलीफोन के ज़रिये यह खबर दी गई

मौसीजी को। पर पूरी खबर अब तक नहीं आयी है। मौसीजी, शानू, मानू—सब भय से आतंकित होकर बेज़बान बन गए हैं। यह दौलत, टीम-टाम, शान-शौकत—सब कुछ ही तो उन्हीं मौसाजी की नौकरी की बदौलत ही है। यह मौसाजी ही अगर नहीं रहे तो सब बेकार है।

मुझे याद है सिर्फ इसी एक दिन मौसीजी के घर उनका धन, मान, ठाट-बाट—सब-कुछ तुच्छ बन गया था। शायद उसी एक दिन मौसीजी को एहसास हुआ होगा कि हम और वे एक हैं, हममें और उनमें कोई भेद नहीं है।

अगले दिन सुबह ही खबर आ गई कि नहीं, मौसाजी किसी संकट में नहीं पड़े हैं। वे सही-सलामत हैं। जो बारिशाल एक्सप्रेस दुर्घटनाग्रस्त हुई है वे उसमें नहीं आ रहे थे। वे आ रहे हैं बाद की ट्रेन में।

अगर किस्मत को माना जाए तो सब कुछ मानना पड़ता है।

मौसीजी के यहां से मां यह खबर लेकर वापस आई। उसी दिन मां काली घाट के मन्दिर में पुजापा चढ़ाने गईं। जैसे मां की ही एक विपत्ति दूर हुई।

मौसीजी से भी मां ने कहा, 'तुम भी कालीघाट जाकर पूजा कर आओ दीदी।'

मैंने उसी दिन सेंट्रल एक्साइज के चटर्जी साहब के घर जाकर मुलाकात की।

सारी बातें उन्हें समझाकर बताई।

चटर्जी साहब बोले, 'ठीक है, कोई हर्ज नहीं। वे जब लौट आए तभी दे देना सार्टिफिकेट, कोई जल्दी तो है नहीं।'

चटर्जी साहब को हो सकता है जल्दी न रही हो, लेकिन मुझे तो थी जल्दी। मैं तो ज्यादा दिन बेकार नहीं बैठा रह सकता था। और कितने दिन मां-बाप से जेबखर्च के पैसे लेता रहूंगा?

मेरे दोस्तों में तब करीब-करीब सबको नौकरी मिल चुकी थी। कोई मर्चेण्ट ऑफिस में घुस गया था, कोई कलकत्ता कॉर्पोरेशन में। सुभाष बोस, आज के नेताजी, तब कॉर्पोरेशन के मेयर थे। वे चुन-चुनकर कर्मठ युवकों को कॉर्पोरेशन के दफ्तर में नौकरी दे रहे थे। लेकिन वे भी मर्जी के मुताबिक सबको नहीं दे पा रहे थे नौकरी। सिर्फ जो जेल गए हैं, या जिन्होंने स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया है, या जो कांग्रेस के स्वयसेवक बने हैं, छांट-छांटकर उन्हींको दी नौकरी उन्होंने। कॉर्पोरेशन के निःशुल्क प्राइमरी स्कूलों में अध्यापक की नौकरी बुरी नहीं थी। उस ज़माने में अच्छी ही थी। तलब थी

तीस रुपये, और साथ में ढेर सारी छुट्टियां। इसके बाद अगर ट्यूशन की गई तो और तीस रुपये पैदा कर लेना भी मुश्किल नहीं था।

हम लोगों ने उस समय अब की तरह ही सरकार के खिलाफ लड़ाई की थी। इस जमाने की लड़ाई तो सीधी है। अब तो कांग्रेस का मतलब ही है सरकार। तब कांग्रेस थी सरकार की दुश्मन। तब कांग्रेस का मेम्बर होने पर सरकार की वक्र दृष्टि का भय रहता था। खुफिया पुलिस पीछे लग जाती थी। तब हर मुहल्ले में लाठी चलाना सिखाने के क्लब थे। सिर्फ लाठी चलाना ही नहीं, कुश्ती लड़ना, छुरा चलाना भी सिखाया जाता था और साथ ही निषिद्ध पुस्तकें भी पढ़ाई जाती थीं। जिन पुस्तकों को सरकार ने जब्त कर लिया है वे हाथों-हाथ इनमें घूमती रहती थीं। विशेष रूप से शरतचन्द्र की 'पथेर दावी' लुका-छिपाकर हरएक मेम्बर को पढ़ाई जाती थी।

और अब की तरह 'सिने-क्लब' नहीं थे उस समय। 'सिने-क्लब' ही नहीं, तब सिनेमा भी बहुत कम आया करते थे। कई अंग्रेजी सिनेमाघर थे, वहीं हमारे कुछ शौकीन दोस्त सिनेमा देख आया करते थे।

जो उन दिनों सिनेमा देखते थे हम उन्हें हिकारत की नजर से देखते थे। उस समय हम लोग स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें पढ़ा करते, अश्विनीकुमार दत्त के ग्रंथों का अनुशीलन करते। उन महापुरुषों को हमने अपना आदर्श बनाया था जिन्होंने देश या आदर्श के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया था।

लेकिन इतना सब करके भी ब्रिटिश सरकार को भगाया नहीं जा सका मुल्क से।

वजह, रुपयों की खातिर मजबूरन हमारे बहुत-से साथियों को सरकारी नौकरी कबूल करनी पड़ती थी। और एक बार सरकारी मुलाजिम हो जाने के बाद उनका हमसे मिलना-जुलना एकदम बन्द हो जाता था क्योंकि ऐसा न करने पर पुलिस की ब्लैक लिस्ट में नाम चढ़ जाने का अंदेशा था।

खैर जो हो, इसी दरमियान खबर मिली कि मौसाजी कलकत्ता वापस लौट आए हैं।

लेकिन ठीक इसी वक्त मां की तबियत खराब हो गई।

पिताजी ने कहा, 'इससे क्या हुआ, अकेले ही जाओ न तुम। तुम्हारी मौसीजी तो पहचानती हैं तुम्हें। शरमाने की क्या बात है ?'

तो भी जाने की तबियत नहीं कर रही थी मेरी।

लेकिन चारा भी क्या था ? जाना तो पड़ेगा ही।

धीरे-धीरे घर से निकला। मा ने हिम्मत बंधाते हुए कहा था, 'जाकर मौसीजी और मौसाजी दोनों को पैर छूकर प्रणाम करना, समझा ?'

रास्ते में मेरे एक चाचा से मुलाकात हो गई। मेरे सगे चाचा नहीं, पिताजी के एक मित्र। एक ज़माना था जब पिताजी उनके साथ एक ही मेस में रहा करते थे।

मुझे देखते ही खड़े हो गए। बोले, 'क्यों, तुम सुशील के लड़के हो न ?'

बोला, 'हां, चाचाजी।' कहकर मैंने उनके चरण स्पर्श किए। पिताजी के साथ मैंने उन्हें बहुत बार देखा था।

सरोज बाबू को पैर छूकर प्रणाम करने में मुझे थोड़ी भी हिचक नहीं हुई।

मेरी सारी बातें सुनकर बोले, 'यह बात है ? तुम्हारे जब सगे मौसाजी हैं तो कहना ही क्या, अगर वे सार्टिफिकेट न दें, तो मुझसे कहना मैं दिलवा दूंगा तुम्हें सार्टिफिकेट।'

मैंने कहा, 'मौसीजी ने कहा है कि सार्टिफिकेट दिलवा देंगी वे मौसाजी से।'

सरोज चाचा बोले, 'सुशील से कह देना कि एक दिन कभी हमारे यहां आए, बहुत दिन से मुलाकात नहीं हुई है उससे। बड़ी इच्छा है उससे मिलने की…'

मैं बोला, 'लेकिन चाचाजी, आप भी थोड़ा ख्याल रखिए। बहुत दिन से नौकरी की कोशिश कर रहा हूं, कुछ नहीं हो पा रहा है।'

सरोज चाचा बोले, 'पर कहां, मुझे तो तुम्हारे पिता ने तुम्हारी नौकरी की बात कभी नहीं कही।'

मैंने कहा, 'पिताजी को सब बातें सब समय याद नहीं रहतीं।'

'ठीक है, तुम एक दिन मुझसे मिलना और एक दरख्वास्त दे जाना। फिर मैं देखूंगा क्या किया जा सकता है।'

तब और ज्यादा ठहरने का मौका नहीं था। सरोज चाचा को भी जल्दी थी। मुझे भी वक्त से मौसीजी के घर पहुंचना था। खैर, एक आशा बंधी मन में। अगर मौसाजी से कोई भरोसा न मिला तो सरोज चाचा को ही पकड़ूंगा। उन्होंने तो खुद ही आशा बंधायी है।

यही सब सोचते हुए मैं फिर चलने लगा मौसीजी के घर की ओर।

आज भी जब मैं उन दिनों की बातें सोचता हूं तो मौसाजी के लिए अफसोस होता है। हो सकता है अब मौसाजी को वे बातें याद न हों। याद रहने पर क्या आज वे इस बुढ़ापे में कोट-पैण्ट उतार कर खद्दर की धोती-चादर पहन-ओढ़कर इलेक्शन में खड़े होते !

मौसाजी का भाषण तब भी चल रहा था उदात्त स्वर में : 'देश का भविष्य आप लोगों के हाथ में है। देश का मतलब ही है देशवासी। आप लोगों पर ही भारत के भविष्य की सुरक्षा निर्भर है। आज चारों ओर जो यह खाद्याभाव है, चारों ओर जो यह अशान्ति है, इसके मूल में है हममें आत्मविश्वास का अभाव। आप दृढ़तापूर्वक निश्चय कीजिए कि हम अपने देश पर चीन के दांत नहीं जमने देंगे। ईश्वर के नाम पर शपथ कीजिए कि आपको जैसे अपने बीवी-बच्चे प्यारे हैं वैसे ही प्यारा यह हिन्दुस्तान भी है। इस देश का अपमान आप लोगों का अपना अपमान है। आज आप लोग उन सब महापुरुषों को याद कीजिए जिन्होंने देश के लिए अपने जीवन की बलि चढ़ायी है। याद कीजिए राष्ट्रपिता गांधी को, याद कीजिए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को, याद कीजिए खुदीराम, यतीनदास, बाघा-यतीन आदि शहीदों को। मैं जानता हूं कि आपकी भूख मिटाने को अन्न, तन ढकने को वस्त्र कांग्रेस सरकार मुहैया नहीं कर पाई है। लेकिन सरकार तो आप ही लोगों की है। भारत के साढ़े सात लाख गांववासियों का कल्याण ही तो चाहती है सरकार। इन्हीं करोड़ों ग्रामवासियों के कल्याण की कामना करके ही तो जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, और इन्दिरा गांधी ने व्यक्तिगत स्वार्थों का परित्याग करके देश की सेवा में जीवन उत्सर्ग कर दिया था और कर दिया है। देश में अन्नाभाव देखकर ही तो इन्दिरा जी ने चावल खाना छोड़ दिया है, यह बात आप अवश्य जानते होंगे। जो लोग नहीं जानते हैं, उनकी जानकारी के लिए बता रहा हूं कि आज के प्रफुल्लसेन आदि श्रद्धेय नेता भी देश की दुर्दशा की बात सोच-सोचकर चिन्ता में व्याकुल हो रहे हैं। आप लोग भी देश से प्रेम करते हैं, आप लोग भी मातृभूमि की कल्याण-कामना करते हैं। अगर आप लोगों का देशप्रेम सच्चा है तो इस बार आप लोग कांग्रेस को वोट देकर अपने श्रद्धेय नेताओं के हाथों को मजबूत कीजिए।'......

मैं दूर खड़ा होकर मौसाजी का भाषण सुन रहा था और मन ही मन सोच रहा था कि हंसूं या रोऊं।

मौसाजी पहने थे खद्दर की धोती और कुरता, कंधे पर थी खद्दर की तह की हुई चादर।

और वह कितने साल पहले की घटना होगी ? वह जो मैं उस दिन सार्टी-फिकेट लेने गया था मौसाजी के घर ?

कम से कम तीस साल पहले की वात तो अवश्य ही होगी। इस तीस साल के अरसे में बहुत-सी घटनाएं घट गयी हैं। शानू की शादी हो गयी है भारत सरकार के एक ऊंचे अफसर के साथ। मानू की भी शादी हो गयी है एक मुन्सिफ के साथ। मुन्सिफ अब प्रमोशन पाकर डिप्टी-मजिस्ट्रेट हो गया है।

आश्चर्य, कितने परिवर्तन हो गए हैं इस ससार मे!

शानू का एकमात्र लड़का यहां से हायर सेकेण्डरी पास करके अमेरिका या इंगलैण्ड में कहीं पढ रहा है। मानू के दो लडके है। वे भी बचपन में ही दार्जिलिंग में पढते थे। अब अमेरिका के किसी इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ रहे हैं।

अगर देखा जाय तो मौसाजी की जमी हुई गृहस्थी है। लक्ष्मी-सरस्वती दोनों ही मौसाजी के दरवाजे पर बंधी है। सेहत भी अच्छी है। सिर्फ बाल ही सफेद हो गए हैं कुछ और कोई परिवर्तन नही हुआ है।

और परिवर्तन होगा भी क्यों ? जिन्दगी में उन्हें न कोई बडी तकलीफ पहुंची है, और न कोई बडा सदमा उठाना पडा है। छोटी उमर से ही नौकरी मे सिर्फ प्रमोशन ही मिलता गया है। और इस तरह तरक्की पा-पाकर सीढी-दर-सीढ़ी ऊपर चढते गए है। इसके बाद नौकरी के अंतिम दिनों मे 'रायबहादुर' बने। फिर सन् १९४७ में अंग्रेज चले गए भारत छोडकर।

अंग्रेजों के चले जाने के बाद अगर किन्हींको कुछ फायदा हुआ है तो सिर्फ मौसाजी जैसे कुछ आदमियो को ही हुआ है।

और इसके बाद ?

इसके बाद एक दिन सबको हैरत मे डालकर मौसाजी 'पद्मश्री' बन गए।

मैं मीटिंग के सामने खडे होकर सिर्फ इन्ही बातों को सोच रहा था। सोच रहा था कि क्या इस मीटिंग में एक भी ऐसा आदमी नही है जो मौसाजी की इन झूठी बातों का प्रतिवाद करे, इन बातों का जवाब दे।

लेकिन देखा कि मीटिंग के चारों ओर पुलिस का पहरा है. भीड़ में भी बहुत-से पुलिसमैन सादे लिबास में मौजूद हैं।

मुझे मौसाजी की वे बातें याद आने लगीं।

भावना थी मेरे प्रति। इसकी वजह यह थी कि मेरे मौसाजी पोस्ट मास्टर जनरल हैं। और सिर्फ पोस्ट मास्टर जनरल ही नहीं, राय साहब का खिताब भी हासिल कर चुके हैं।

यह वह जमाना था जब किसीका रिश्तेदार अगर सरकारी अफसर होता तो उसे ताने सुनने पड़ते थे। इसीलिए जब तक कोई खास जरूरत नहीं होती थी, अपने मौसाजी का परिचय नहीं देता था मैं। किसीके पिता, चाचा, या ताऊ अगर सरकारी नौकर होते तब तो बात ही नहीं थी। मगर चोरी-चोरी कांग्रेस को चंदा सब देते थे।

मुझे याद है, पिताजी ने एक बार पच्चीस रुपया चंदा दिया था कांग्रेस फण्ड में। स्वागत समिति की सदस्यता का चंदा था यह।

रसीद देते समय पिताजी ने कहा था, 'मेहरबानी करके मेरे नाम की रसीद न काटें, मुझे रसीद नहीं चाहिए।'

जो सज्जन चंदा वसूल करने आए थे उन्होंने कहा, 'क्यों ? डर क्यों रहे हैं आप ? बहुत लोग तो मेम्बर बन रहे हैं आजकल।'

पिताजी ने कहा था, 'बनने दीजिए, न जाने कब किसे पता चल जाएगा, मुसीबत में पड़ जाऊंगा तब मैं। चारों ओर आजकल पुलिस के सिपाई घूम रहे हैं।' सचमुच तब ऐसी ही भयानक अवस्था थी देश की। कांग्रेस का नाम सुनते ही शांतिप्रिय लोग भय से सिहर उठते थे। लेकिन भीतर ही भीतर कांग्रेस से मुहब्बत भी करते थे।

और मैं, उसी जमाने का एक बेकार युवक, जा रहा था राय साहब मौसाजी से सार्टीफिकेट मांगने !

नीचे शंख-घड़ी-घंटा की मांगलिक ध्वनि तब भी जारी थी। पूजा के धूप की गंध आ रही थी नाक में।

मौसाजी के कमरे के सामने पहुंचकर देखा कि वे कोने वाली आराम-कुर्सी पर लेटे अखबार पढ़ रहे हैं। मुझे नहीं देख पाए वे। बदन पर गाउन है, पायजामा पहने हैं। पैर में हैं हिरन के चमड़े की चट्टियां।

समझ में नहीं आया क्या करूं।

बहुत देर तक वहां खड़े रहने के बाद, मैं कमरे के अन्दर चला गया।

इसके बाद उसी हालत में चुपचाप पत्थर की मूरत बना खड़ा रहा।

एकाएक मुझपर नजर पड़ते ही वे बोल उठे, 'कौन हो तुम ? क्या चाहते हो ?'

मैंने डरते हुए कहा, 'मैं भवानीपुर से आ रहा हूं।'

'भवानीपुर से ? क्या मतलब ?'

मैं बोला, 'आप मेरे मौसाजी लगते हैं, मुझे आपने पहले भी कई बार अवश्य देखा होगा।'

'मैंने देखा है तुम्हे ?'

तब और ज्यादा सोचने का वक्त नही था।

मैंने कह डाला, 'पंकजिनी को पहचानते हैं आप ? वे मेरी मां हैं। मैं उन्हीका लड़का हू।'

मुझपर रहम खाकर शायद इतनी देर बाद पहचाना उन्होंने।

बोले, 'ओ यह बात है, आओ बैठो।'

थोड़ी हिम्मत बढी मेरी। मैंने उनके सामने जाकर उनके हिरन के चमडे वाली चट्टियो की धूल लेकर माथे पर लगायी।

बोला, 'मौसीजी ने कुछ नहीं कहा है आपसे ?'

'किसके बारे मे, बताओ तो ?'

मैंने कहा, 'एक नौकरी के लिए दरख्वास्त भेजूगा मैं, साथ मे एक कैरेक्टर सार्टीफिकेट देना पड़ेगा। इसी सार्टीफिकेट के लिए मैं आपके पास आया हू। परसों भी आया था मां के साथ तब आप थे नही, टूर पर गए थे।'

'सार्टीफिकेट ?'

बोला, 'हां, कैरेक्टर सार्टीफिकेट।'

न जाने क्या सोचने लगे मौसाजी मन ही मन।

इसके बाद बोले, 'लेकिन मैं न तुम्हें पहचानता हू और न तुम्हारे कैरेक्टर के विषय में जानता हूं, कैरेक्टर सार्टीफिकेट कैसे दे सकता हू फिर ?'

मैं बोला, 'लेकिन आपने मुझे देखा तो है।'

'तुम्हें देखा है ? कहां देखा है ? कब देखा है ?'

मैंने कहा, 'मेरी चचेरी बहन की शादी की ज्योनार में आप गए थे, वहां मैंने आपके चरणस्पर्श किए थे।'

गम्भीर स्वर मे मौसाजी बोले, 'मेरे चरणस्पर्श तो हजारों आदमी करते हैं, इसलिए क्या उन सबको याद रखना पड़ेगा ?'

बात ठीक भी है। वाकई जो मशहूर और बड़े आदमी हैं उनके लिए क्या मुमकिन है सबको याद रखना ?

क्या करता, तब दूसरा रास्ता पकड़ा मैंने।

मैंने कहा, 'लेकिन आप अगर सार्टीफिकेट नहीं देंगे तो मुझे नौकरी नहीं मिलेगी।'

मौसाजी बोले, 'तो मैं तुम्हें झूठा सार्टीफिकेट तो नहीं दे सकता।'

मैं कुछ कहने जा रहा था, मौसाजी ने रोक दिया। बोले, 'चुप रहो, तुम सब अनाड़ी छोकरे दुनिया के हालचाल से तो वाकिफ हो नहीं, तुम लोग कैसे समझोगे कि हम जैसे हाई गवर्नमेंट ऑफिसर्स की कितनी जिम्मेदारी होती है। मुल्क को तो जहन्नुम रसीद किए दे रही है तुम्हारी कांग्रेस ? चूंकि अंग्रेज सरकार अभी कायम है, तभी चल रहा है मुल्क ! नहीं तो कभी का खतम हो गया होता, यह जानते हो ?'

मैं क्या जवाब देता इसका, सिर्फ चुप बना रहा।

मौसाजी ने फिर कहना शुरू किया, 'वह जो तुम लोगों का एक नेता बन गया है, गांधी, बनिया का बच्चा, स्कूल-कॉलेज के लड़कों को बर्गला रहा है बिना किसी तुक के। वे भी स्कूल-कॉलेज छोड़कर नमक-सत्याग्रह में शरीक हो रहे हैं। अरे बाबा, नमक की कीमत ही क्या है ? कितने पैसे का नमक खाते हैं हम प्रतिदिन ? क्या हुआ, चुप क्यों हो, बताओ ? यंगमैन हो तुम लोग, तुम्हीं लोगों को तो जवाब देना है।'

मेरे जवाब का इंतजार किए बिना फिर मौसाजी ने अपने दिल का गुबार निकालना शुरू किया। लगा जैसे बहुत दिनों से जमा हो रही थीं ये बातें उनके मन में। कहने लायक कोई आदमी नहीं मिला था, इसीलिए चुप थे इतने दिन। अब मुझे सामने पाकर ज्वालामयी वाणी निःसृत होने लगी उनके मुंह से।

बोले, 'जैसे यह गांधी है, वैसे और एक है—जवाहरलाल। साहब लोग जब मेरे सामने उन्हें गाली देते हैं तब मुझे शर्म के मारे चुप रह जाना पड़ता है, यह जानते हो ? मुझे बुरा लगता है। आखिर मैं भी तो एक हिन्दुस्तानी हूं। मैं उनसे पूछता हूं, तुम लोगों ने पढ़ना-लिखना किससे सीखा ? किसने तुम लोगों को अंग्रेजी सिखायी ? अंग्रेजी सीखी है तभी तो तुम्हारा दिमाग इतना गरम हो गया है। जिन अंग्रेजों से अंग्रेजी सीखी है, फिर उन्हीं अंग्रेजों को गाली दे रहे हो तुम लोग ? यह अगर नमकहरामी न हो तो किसे कहा जाए नमक-हरामी, बताओ ?'

इसके बाद जैसे एकाएक नजर पड़ी मुझपर। लगा, मुझे जैसे अभी देखा उन्होंने। बोले, 'तुम्हीं लोग तो हो आजकल के लड़के, तुम्हीं लोग तो हो गांधी महाराज के चेले...'

मैं प्रतिवाद करने जा रहा था, 'जी ···'

'तुम चुप रहो। जानता हूं, क्या कहोगे तुम। नौकरी ढूंढ़ने के वक्त हम लोगों की खुशामद करते हो और दूसरे वक्त देशभक्ति का राग अलापते हो तुम लोग। मैं पूछता हूं, 'वंदे मातरम्' का नारा लगाकर जेल जाने से क्या फायदा होगा? इस मुल्क को छोड़कर क्या अंग्रेज़ कभी जाएंगे, सोचा है तुमने? क्यों जाएंगे, बताओ तो? क्या तकलीफ है उन्हें कि जायेंगे? क्यों, बताओ न तुम्हारे साथियों का क्या ख्याल है?'

मैं बहुत देर से चुप बैठा था।

अब और चुप रहना सम्भव नहीं था। बोला, 'मैं कुछ नहीं जानता।'

मौसाजी नाराज़ हो गए। बोले, 'तुम नहीं जानते? तुम लोग यंगमैन हो, तुम लोग नहीं जानोगे तो कौन जानेगा? तुम लोग अगर एकमत होकर कांग्रेस वालों से कह दो कि उनकी बात तुम लोग नहीं मानोगे, ब्रिटिश सरकार की आज्ञानुसार चलोगे, तब तो सारा झंझट ही दूर हो जाए। असल बात क्या है जानते हो, यह अंग्रेज जाति कितनी महान जाति है, इस बात को तुम लोगों का वह गांधी नहीं समझ रहा है। अरे बाबा, बम और गोली चलाकर अंग्रेजों को नहीं भगाया जा सकता — इस बात को निश्चित जान लो।'

एकाएक मौसीजी अन्दर आयीं।

'लो, यह प्रसाद लो।' कहकर मौसाजी को प्रसाद और चरणामृत दिया। मुझे भी दिया थोड़ा-सा प्रसाद। मैंने उसे भक्तिपूर्वक माथे से लगाकर मुंह में डाल लिया।

मौसीजी चली जा रही थीं, लेकिन जाने से पहले मेरी ओर देखकर बोलीं, 'अपनी मां से एक दिन आने को कह देना, समझा। मैं उसे खबर नहीं दे पाई थी झंझटों के मारे। चारों ओर हज़ार झमेले हैं मेरे ···' कहते-कहते मौसीजी चली गईं अपने काम से। मौसाजी इतनी बड़ी एक दुर्घटना से बच गए, अतः एक बड़ी चिन्ता दूर हो गई, एक भारी संकट टल गया। लेकिन इसका असर रहेगा और कुछ समय तक।

उधर से ध्यान हटाकर मौसाजी ने कहा, 'तो तुम क्या चाहते हो मुझसे बताओ···'

इतनी देर बाद काम की बात आने पर थोड़ा उत्साहित हो उठा मैं।

बोला, 'एक कैरेक्टर सार्टिफिकेट···'

'कैरेक्टर सार्टिफिकेट?'

मैंने कहा, 'लेकिन आप अगर सार्टीफिकेट नहीं देंगे तो मुझे नौकरी नहीं मिलेगी।'

मौसाजी बोले, 'तो मैं तुम्हें झूठा सार्टीफिकेट तो नहीं दे सकता।'

मैं कुछ कहने जा रहा था, मौसाजी ने रोक दिया। बोले, 'चुप रहो, तुम सब अनाड़ी छोकरे दुनिया के हालचाल से तो वाकिफ हो नहीं, तुम लोग कैसे समझोगे कि हम जैसे हाई गवर्नमेंट ऑफिसर्स की कितनी ज़िम्मेदारी होती है। मुल्क को तो जहन्नुम रसीद किए दे रही है तुम्हारी कांग्रेस? चूंकि अंग्रेज सरकार अभी कायम है, तभी चल रहा है मुल्क! नहीं तो कभी का खतम हो गया होता, यह जानते हो?'

मैं क्या जवाब देता इसका, सिर्फ चुप बना रहा।

मौसाजी ने फिर कहना शुरु किया, 'वह जो तुम लोगों का एक नेता बन गया है, गांधी, बनिया का बच्चा, स्कूल-कॉलेज के लड़कों को वर्गला रहा है बिना किसी तुक के। वे भी स्कूल-कॉलेज छोड़कर नमक-सत्याग्रह में शरीक हो रहे हैं। अरे बाबा, नमक की कीमत ही क्या है? कितने पैसे का नमक खाते हैं हम प्रतिदिन? क्या हुआ, चुप क्यों हो, बताओ? यंगमैन हो तुम लोग, तुम्हीं लोगों को तो जवाब देना है।'

मेरे जवाब का इंतज़ार किए बिना फिर मौसाजी ने अपने दिल का गुबार निकालना शुरु किया। लगा जैसे बहुत दिनों से जमा हो रही थीं ये बातें उनके मन में। कहने लायक कोई आदमी नहीं मिला था, इसीलिए चुप थे इतने दिन। अब मुझे सामने पाकर ज्वालामयी वाणी निःसृत होने लगी उनके मुंह से।

बोले, 'जैसे यह गांधी है, वैसे और एक है—जवाहरलाल। साहब लोग जब मेरे सामने उन्हें गाली देते हैं तब मुझे शर्म के मारे चुप रह जाना पड़ता है, यह जानते हो? मुझे बुरा लगता है। आखिर मैं भी तो एक हिन्दुस्तानी हूं। मैं उनसे पूछता हूं, तुम लोगों ने पढ़ना-लिखना किससे सीखा? किसने तुम लोगों को अंग्रेजी सिखायी? अंग्रेज़ी सीखी है तभी तो तुम्हारा दिमाग इतना गरम हो गया है। जिन अंग्रेज़ों से अंग्रेज़ी सीखी है, फिर उन्हीं अंग्रेज़ों को गाली दे रहे हो तुम लोग? यह अगर नमकहरामी न हो तो किसे कहा जाए नमकहरामी, बताओ?'

इसके बाद जैसे एकाएक नजर पड़ी मुझपर। लगा, मुझे जैसे अभी देखा उन्होंने। बोले, 'तुम्हीं लोग तो हो आजकल के लड़के, तुम्हीं लोग तो हो गांधी महाराज के चेले...'

मैं प्रतिवाद करने जा रहा था, 'जी…'

'तुम चुप रहो। जानता हूं, क्या कहोगे तुम। नौकरी ढूंढने के वक्त हम लोगों की खुशामद करते हो और दूसरे वक्त देशभक्ति का राग अलापते हो तुम लोग। मैं पूछता हूं, 'वंदे मातरम्' का नारा लगाकर जेल जाने से क्या फायदा होगा ? इस मुल्क को छोड़कर क्या अंग्रेज कभी जाएंगे, सोचा है तुमने? क्यों जाएंगे, बताओ तो ? क्या तकलीफ है उन्हें कि जायेंगे ? क्यों, बताओ न तुम्हारे साथियों का क्या ख्याल है ?'

मैं बहुत देर से चुप बैठा था।

अब और चुप रहना सम्भव नहीं था। बोला, 'मैं कुछ नहीं जानता।'

मौसाजी नाराज हो गए। बोले, 'तुम नहीं जानते ? तुम लोग यगमैन हो, तुम लोग नहीं जानोगे तो कौन जानेगा ? तुम लोग अगर एकमत होकर कांग्रेस वालों से कह दो कि उनकी बात तुम लोग नहीं मानोगे, ब्रिटिश सरकार की आज्ञानुसार चलोगे, तब तो सारा झंझट ही दूर हो जाए। असल बात क्या है जानते हो, यह अंग्रेज जाति कितनी महान जाति है, इस बात को तुम लोगों का वह गांधी नहीं समझ रहा है। अरे बाबा, बम और गोली चलाकर अंग्रेजों को नहीं भगाया जा सकता—इस बात को निश्चित जान लो।'

एकाएक मौसीजी अन्दर आयीं।

'लो, यह प्रसाद लो।' कहकर मौसाजी को प्रसाद और चरणामृत दिया। मुझे भी दिया थोड़ा-सा प्रसाद। मैंने उसे भक्तिपूर्वक माथे से लगाकर मुंह में डाल लिया।

मौसीजी चली जा रही थीं, लेकिन जाने से पहले मेरी ओर देखकर बोलीं, 'अपनी मां से एक दिन आने को कह देना, समझा। मैं उसे खबर नहीं दे पाई थी झंझटों के मारे। चारों ओर हजार झमेले हैं मेरे'' कहते-कहते मौसीजी चली गई अपने काम से। मौसाजी इतनी बड़ी एक दुर्घटना से बच गए, अतः एक बड़ी चिन्ता दूर हो गई, एक भारी संकट टल गया। लेकिन इसका असर रहेगा और कुछ समय तक।

उधर से ध्यान हटाकर मौसाजी ने कहा, 'तो तुम क्या चाहते हो मुझे बताओ…'

इतनी देर बाद काम की बात आने पर थोड़ा उत्साहित हो उठा मैं। बोला, 'एक कैरेक्टर सार्टिफिकेट…'

'कैरेक्टर सार्टिफिकेट ?'

मैंने कहा, 'लेकिन आप अगर सार्टीफिकेट नहीं देंगे तो मुझे नौकरी नहीं मिलेगी।'

मौसाजी बोले, 'तो मैं तुम्हें झूठा सार्टीफिकेट तो नहीं दे सकता।'

मैं कुछ कहने जा रहा था, मौसाजी ने रोक दिया। बोले, 'चुप रहो, तुम सब अनाड़ी छोकरे दुनिया के हालचाल से तो वाकिफ हो नहीं, तुम लोग कैसे समझोगे कि हम जैसे हाई गवर्नमेंट ऑफिसर्स की कितनी जिम्मेदारी होती है। मुल्क को तो जहन्नुम रसीद किए दे रही है तुम्हारी कांग्रेस ? चूंकि अंग्रेज सरकार अभी कायम है, तभी चल रहा है मुल्क ! नहीं तो कभी का खतम हो गया होता, यह जानते हो ?'

मैं क्या जवाब देता इसका, सिर्फ चुप बना रहा।

मौसाजी ने फिर कहना शुरु किया, 'वह जो तुम लोगों का एक नेता बन गया है, गांधी, बनिया का बच्चा, स्कूल-कॉलेज के लड़कों को बर्गला रहा है बिना किसी तुक के। वे भी स्कूल-कॉलेज छोड़कर नमक-सत्याग्रह में शरीक हो रहे हैं। अरे बाबा, नमक की कीमत ही क्या है ? कितने पैसे का नमक खाते हैं हम प्रतिदिन ? क्या हुआ, चुप क्यों हो, बताओ ? यंगमैन हो तुम लोग, तुम्हीं लोगों को तो जवाब देना है।'

मेरे जवाब का इंतज़ार किए बिना फिर मौसाजी ने अपने दिल का गुबार निकालना शुरू किया। लगा जैसे बहुत दिनों से जमा हो रही थीं ये बातें उनके मन में। कहने लायक कोई आदमी नहीं मिला था, इसीलिए चुप थे इतने दिन। अब मुझे सामने पाकर ज्वालामयी वाणी निःसृत होने लगी उनके मुंह से।

बोले, 'जैसे यह गांधी है, वैसे और एक है—जवाहरलाल। साहब लोग जब मेरे सामने उन्हें गाली देते हैं तब मुझे शर्म के मारे चुप रह जाना पड़ता है यह जानते हो ? मुझे बुरा लगता है। आखिर मैं भी तो एक हिन्दुस्तानी हूं मैं उनसे पूछता हूं, तुम लोगों ने पढ़ना-लिखना किससे सीखा ? किसने तु लोगों को अंग्रेजी सिखायी ? अंग्रेजी सीखी है तभी तो तुम्हारा दिमाग इतन गरम हो गया है। जिन अंग्रेजों से अंग्रेजी सीखी है, फिर उन्हीं अंग्रेजों को गाल दे रहे हो तुम लोग ? यह अगर नमकहरामी न हो तो किसे कहा जाए नम हरामी, बताओ ?'

इसके बाद जैसे एकाएक नज़र पड़ी मुझपर। लगा, मुझे जैसे अभी दे उन्होंने। बोले, 'तुम्हीं लोग तो हो आजकल के लड़के, तुम्हीं लोग तो हो ग महाराज के चेले…'

मैं प्रतिवाद करने जा रहा था, 'जी ···'

'तुम चुप रहो। जानता हूं, क्या कहोगे तुम। नौकरी ढूढने के वक्त हम लोगों की खुशामद करते हो और दूसरे वक्त देशभक्ति का राग अलापते हो तुम लोग। मैं पूछता हूं, 'वदे मातरम्' का नारा लगाकर जेल जाने से क्या फायदा होगा? इस मुल्क को छोड़कर क्या अंग्रेज कभी जाएगे, सोचा है तुमने? क्यों जाएगे, बताओ तो? क्या तकलीफ है उन्हे कि जायेंगे? क्यों, बताओ न तुम्हारे साथियों का क्या ख्याल है?'

मैं बहुत देर से चुप बैठा था।

अब और चुप रहना सम्भव नहीं था। बोला, 'मैं कुछ नहीं जानता।'

मौसाजी नाराज हो गए। बोले, 'तुम नहीं जानते? तुम लोग यंगमैन हो, तुम लोग नहीं जानोगे तो कौन जानेगा? तुम लोग अगर एकमत होकर कांग्रेस वालो से कह दो कि उनकी बात तुम लोग नहीं मानोगे, ब्रिटिश सरकार की आज्ञानुसार चलोगे, तब तो सारा झझट ही दूर हो जाए। असल बात क्या है जानते हो, यह अंग्रेज जाति कितनी महान जाति है, इस बात को तुम लोगो का वह गाधी नहीं समझ रहा है। अरे बाबा, बम और गोली चलाकर अंग्रेजों को नही भगाया जा सकता — इस बात को निश्चित जान लो।'

एकाएक मौसीजी अन्दर आयीं।

'लो, यह प्रसाद लो।' कहकर मौसाजी को प्रसाद और चरणामृत दिया। मुझे भी दिया थोड़ा-सा प्रसाद। मैंने उसे भक्तिपूर्वक माथे से लगाकर मुह मे डाल लिया।

मौसीजी चली जा रही थी, लेकिन जाने से पहले मेरी ओर देखकर बोलीं, 'अपनी मा से एक दिन आने को कह देना, समझा। मैं उसे खबर नहीं दे पाई थी झंझटों के मारे। चारो ओर हजार झमेले हैं मेरे ···' कहते-कहते मौसीजी चली गई अपने काम में। मौसाजी इतनी बडी एक दुर्घटना से बच गए, अत एक बड़ी चिन्ता दूर हो गई, एक भारी सकट टल गया। लेकिन इसका असर रहेगा और कुछ समय तक।

उधर से ध्यान हटाकर मौसाजी ने कहा, 'तो तुम क्या चाहते हो मुझे बताओ···'

इतनी देर बाद काम की बात आने पर थोड़ा उत्साहित हो उठा मैं।

बोला, 'एक कैरेक्टर सार्टिफिकेट···'

'कैरेक्टर सार्टिफिकेट?'

मैंने कहा, 'हां, सेंट्रल एक्साइज डिपार्टमेंट में एक क्लर्क की जगह खाली है। वहां के बड़े साहब मिस्टर चटर्जी ने एक दरख्वास्त देने के लिए कहा है और साथ ही किसी गवर्नमेंट ऑफीसर का कैरेक्टर सार्टिफिकेट भी मांगा है।'

मौसाजी सब सुनकर बोले, 'लेकिन तुम्हारा कैरेक्टर कैसा है, यह तो मैं नहीं जानता, तब तुम्हें कैरेक्टर सार्टिफिकेट कैसे दे सकता हूं मैं ?'

मैं बोला, 'क्यों, आप जानते तो हैं मुझे···'

मौसाजी हैरत में आ गए। बोले, 'क्या कहा ? मैं तुम्हें जानता हूं ? कैसे ?'

मैंने कहा, 'नहीं जानते हैं मुझे आप ?'

मौसाजी ने कहा, 'यह पहली मर्तबा तो देख रहा हूं तुम्हें, कैसे जानूंगा तब मैं तुम्हें ?"

'मुझे न जानते हों न जानें, लेकिन मेरी मां को तो जानते हैं आप। मैं पंकजिनी का ही तो लड़का हूं।'

'तो तुम्हारी मां को जानना और तुम्हें जानना एक बात है ? क्या कहते हो जी छोकरे तुम ?'

एक अवज्ञा की भंगी से मेरी ओर देखते रहे मौसाजी।

'अजीब लड़के हो तुम ! तुम्हें न जानता हूं न पहचानता हूं, और कैरेक्टर सार्टिफिकेट दे दूं ?'

मैं बोला, 'पर इतनी देर से तो बातें कर रहा हूं आपसे, मुझे आपने इतनी देर तो देख ही लिया।'

मौसाजी बोले, 'सुनो बात इसकी, इतनी-सी देर देखकर ही क्या किसीके कैरेक्टर के बारे में जाना जा सकता है ? भीतर ही भीतर तुम कांग्रेस के मेम्बर हो या नहीं, मुझे कैसे पता चलेगा ? तुम बम-गोली वाले आतंकवादी नहीं हो, यह भी कैसे जानूंगा मैं ?'

मैंने कहा, 'अगर यह बात होती तो मैं खद्दर पहनता···'

'मुझसे सार्टिफिकेट लेने आए हो, तो क्या तुम खद्दर पहनकर आते ? ऐसा करता है कोई ? दूसरे वक्त तुम खद्दर पहनते या नहीं, मैं कैसे जान सकता हूं ?'

मैं बोला, 'मैं सचमुच खद्दर नहीं पहनता, यकीन कीजिए।'

मौसाजी बोले, 'देखो, मैं हूं पोस्ट मास्टर जनरल। अंग्रेज मेरी सूरत देखकर तनख्वाह नहीं देते, सीरत देखकर देते हैं···। क्या सभी कांग्रेसी गुण्डे खद्दर पहनते हैं ?'

मैंने कहा, 'मुझे कुछ नहीं कहना है।'

'हां, मेरी भी यही सलाह है कि यहां तुम कुछ दिन आते-जाते रहो जिससे मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचान लूं। तभी मैं तुम्हें कैरेक्टर सार्टिफिकेट दे सकूंगा।'

इसके बाद मेरे कहने को और कुछ न रहा।

मैं बोला, 'तब क्या होगा?'

मौसाजी ने कहा, 'होगा क्या, मैं तुम्हें कैरेक्टर सार्टिफिकेट नहीं दे सकूंगा। मुझे एक काम है, तुम अब जा सकते हो।'

क्या करता, उठ पड़ा। मुझे याद है कि आते वक्त मैंने जान-बूझकर मौसाजी के चरणस्पर्श नहीं किए थे। जी बड़ा खट्टा हो गया था मौसाजी के व्यवहार से उस दिन। मन में सोचा था, जिन्दगी में नौकरी न मिले, फाका करना पड़े, सो भी अच्छा, लेकिन ऐसे आदमी के पास किसी हालत में नहीं जाऊंगा फिर कभी।

अगले साल मौसाजी 'रायबहादुर' बने। उस उपलक्ष्य में कालीघाट के मन्दिर में पुजापा चढ़ाया गया। एक बड़ा समारोह हुआ घर पर। आत्मीय-स्वजनों को भोज में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित किया गया।

और उसके अगले साल शानू की शादी हुई एक ऊंचे सरकारी अफसर के साथ। और कुछ दिन बाद मानू की भी शादी हुई। बहुत-से लोग आए दावत में। सैकड़ों रुपए की आतिशबाजी जलाई गई।

मेरे पिता, मां, छोटे भाई उस जशन में शरीक हुए और भरपेट खाकर घर लौटे। जय-जयकार होने लगा मौसाजी का। जैसे-जैसे मौसाजी की पदोन्नति होने लगी, वैसे ही मौसीजी के शरीर पर गहने भी बढ़ने लगे। दामादों की दशा भी और अच्छी होने लगी धीरे-धीरे। एक दामाद विलायत गया सरकारी काम से, साथ गई उसकी बीवी।

और इधर हम लोगों की दशा बिगड़ने लगी क्रमशः। मेरी छोटी बहन की टायफायड रोग से मृत्यु हो गयी।

खबर पाकर मौसीजी मेहरबानी करके हमारे यहां आयीं।

उस हालत में भी मां अपनी दीदी को देखकर इतनी खुश हुईं जैसे कि आसमान का चांद हाथ लग गया हो। उन्हें देखकर अपनी बेटी का शोक भी जैसे भूल गयीं।

मुझे एक कोने में बुलाकर कहा, 'सुन, उस नुक्कड़ की दुकान पर से सन्देश और समोसे ले आ। दीदी कभी नहीं आतीं—आज आयी हैं, उनका कुछ

सत्कार तो करना ही चाहिए।'

मौसीजी मां की सगी मां-जायी बहन हैं। पर तो भी चूंकि वे अमीर हैं, तभी शायद हम लोगों के लिए मेहमान जैसी हैं।

मैंने कहा, 'बेकार क्यों मिठाई-नमकीन लाने जाऊं, मौसीजी क्या तुम्हें प्यार करती हैं ?'

मां ने कहा, 'छीः, ऐसी बात नहीं कहते, मेरी सगी बड़ी बहन हैं। एक दिन हमारे यहां आयी हैं, अगर हम आदर-सत्कार न करें तो बता, क्या सोचेंगी मन में।'

मैं बोला, 'लेकिन मेरी सगी बहन मर गयी है। यह मिठाई खिलाने का मौका तो है नहीं। फिर, मौसीजी ने क्या कभी सन्देश नहीं खाया है ?'

मां ने कहा, 'नहीं रे, उनके यहां जाने पर दीदी कितना खिलाती हैं, कितनी खातिरदारी करती हैं; करती हैं या नहीं तू ही बता .....'

और ज्यादा बहस नहीं कर पाया मां से। आखिर में मोड़ की दुकान पर से मिठाई-नमकीन ले आया। मां उन्हें प्लेट में सजाकर मौसीजी के सामने ले आयीं। बोलीं, 'लो दीदी, थोड़ा मुंह मीठा कर लो। तुम तो कभी आती ही नहीं।'

मौसीजी बोलीं, 'मेरे लिए व्यर्थ में क्यों इतनी तकलीफ करने गयी तू ?' कहकर उन्होंने गिलास के पानी से हाथ-मुंह धो लिए। फिर बोलीं, 'मिठाई-नमकीन खिला रही है तो भई, थोड़ी चाय भी बना दे।'

मां व्यस्त हो उठीं।

मौसीजी ने कहा, 'और एक काम कर, दो समोसे भिजवा दे मेरे ड्राइवर को, और थोड़ी चाय भी।'

यह कहकर अपनी प्लेट से दो समोसे अलग रख दिए।

एक तो मौसीजी की खातिरदारी, तिसपर मौसीजी के ड्राइवर की भी खातिरदारी करनी पड़ेगी, यह असह्य हो रहा था मुझे। पर मां का ख्याल करके सहना पड़ा। अमीरों से रिश्तेदारी कितनी तकलीफदेह होती है, इसका एहसास मुझे उसी दिन हुआ।

मौसीजी बोलीं, 'मेरे ड्राइवर की चाय में तीन चम्मच चीनी डालना, वह थोड़ा चीनी अधिक पसंद करता है।'

उसके बाद मुझपर नजर पड़ी मौसीजी की, 'क्यों जी क्या कर रहे हो आजकल ?'

माँ बोली, 'एक नौकरी मिल गयी है बिलू को। आजकल नौकरी मिलना क्या सहज है दीदी, बड़ी तकलीफ सह केकाली मैया की कृपा से मिली है यह नौकरी। तुम आशीर्वाद दो दीदी, कि बिलू अपने काम में अपने बड़े साहब को खुश कर सके···'

मौसीजी ने कहा, 'बड़ा लाड़-चाव करती है तू अपने बच्चों का। तेरे जीजाजी कह रहे थे, पंकजिनी बच्चों का पालन करना नहीं जानती।'

'क्यों दीदी, मैंने क्या किया? मैं कहा लाड़-चाव करती हूं अपने बच्चों का?'

मौसीजी ने कहा, 'नहीं रे, ज़माना बड़ा खराब हो गया है अब। यह जो नासपीटी कांग्रेस है, इसने सारे माहौल को ही खराब कर दिया है। तेरे जीजाजी को फूटी आंखों नहीं सुहाती यह कांग्रेस। वे कहते हैं कि अगर आजकल के छोकरों को कांग्रेसी बनाना है तो कांग्रेसी ही बन जाय बिलकुल, नौकरी-चाकरी का नाम तब ज़बान पर न लाए। मेरा बड़ा दामाद विलायत गया है, जाने से पहले हम लोगों को प्रणाम करने आया था। तेरे जीजाजी ने दामाद से कहा, 'बेटा, तुम्हें मैंने योग्य समझकर ही अपना दामाद बनाया है, मेरी प्रतिष्ठा का ध्यान रखना। देखना, साहबों के सामने मेरा सिर न नीचा होने पाए···'

मौसाजी की यह सबसे बड़ी कमजोरी थी।

कमजोरी कहो तो यह कमजोरी ही है, एम्बिशन कहो तो एम्बिशन। दोनों हैं ये।

छोटी उमर से ही इस एक ही वस्तु की साधना की थी मौसाजी ने। वह थी अंग्रेज़ों के प्रति भक्ति। निरंतर प्रार्थना की थी कि श्वेतांग प्रभुओं के प्रति उनकी भक्ति अचला बनी रहे।

इसीलिए जब मौका मिला है, अंग्रेजी भाषा को अच्छी तरह सीखने की कोशिश की है। अंग्रेज़ी लिखना और बोलना। और अपने आसपास जो अंग्रेज़ी जानते थे सिर्फ उन्हें ही वे आदमी समझते थे, और सबको गधा। और उन अंग्रेज़ों की जो निन्दा करते थे, उनपर जो बम-पिस्तौल का वार करते थे, ऐसे लोगों से हृदय से घृणा करते थे।

कहते थे, 'ये इनसान हैं, या हैवान?'

इस अंग्रेज-प्रीति के लिए मौसाजी को आत्मीय-स्वजनों के लांछन सुनने पड़े हैं, पड़ोसियों के व्यंग्य सहने पड़े हैं। जब 'रायसाहब' से 'रायबहादुर'

बने, उन्हें उम्मीद थी कि उनके रिश्तेदार, दोस्त वगैरह आकर उन्हें मुबारकबाद देंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उनकी तबियत थी कि दरवाजे पर एक बोर्ड लगवायें, पीतल का बोर्ड जिसपर नाम के आगे 'रायबहादुर' बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा रहे। लेकिन आखिरकार ऐसा नहीं किया, शायद सुमति आ गयी थी सगे-सम्बन्धियों के रुख को देखकर।

पर मनचाहे दामाद पाने के बाद उनका दिल फिर चंगा हो उठा था।

मैंने भी दामादों को देखा है। जैसे ससुर हैं, बिलकुल वैसे ही हैं दामाद भी। ससुर की तरह ही सूट-टाई-विभूषित। ससुर की तरह ही स्नॉब। ससुर की तरह ही भारतीयता के घोर निन्दक।

संयोग की बात, ठीक उसी समय मेरे पिताजी की मृत्यु हो गयी। मृत्यु के पहले तक दवाई, डाक्टर और अर्थाभाव से पागलों जैसी हालत हो गयी थी मेरी। समझ नहीं पा रहा था कि रुपये की फिक्र करूं या पिता के जीवन की।

पिताजी की बीमारी का हाल सुनकर मौसीजी एक बार देखने आयी थीं उनकी मृत्यु से पहले। आकर ही बोलीं, 'कौन देख रहा है? कौन-सा डाक्टर?'

मां ने कहा, 'हमारे इस मुहल्ले के ही पुराने डाक्टर हैं। बहुत दिनों की जान-पहचान है......'

मौसीजी ने कहा, 'छी-छी, तू बड़ी बेवकूफ है। लेकिन तेरा लड़का तो पढ़ा-लिखा है, उसे तो समझ से काम लेना चाहिए था। मुहल्ले के बंगाली डाक्टर को क्यों दिखाया? तेरे जीजाजी सुनेंगे तो बहुत नाराज होंगे।'

मैं तब पिताजी के सिर पर आइस-बैग लगा रहा था।

मां ने आकर कहा, 'अरे सुन, दीदी बुला रही है तुझे, आ सुन आ। दे, मैं लगा रही हूं आइस-बैग...'

मुझे गुस्सा आ गया। बोला, 'अब बुलाने की क्या जरूरत है? तुम्हारी दीदी के उपदेश सुनने का वक्त नहीं है मेरे पास। जाओ, कह दो उनसे तुम कि मैं पिताजी के सिर पर आइस-बैग लगा रहा हूं...'

नम्र स्वभाव की है मां। बोलीं, 'छी-छी, ऐसी बात नहीं कहते। मौसी लगती है तेरी। आपत्ति-विपत्ति में तो लोग आते ही हैं, और ऐसे वक्त नहीं आयेंगे तो कब आयेंगे? दे, मुझे दे आइस-बैग......'

लिहाजा उठना पड़ा मुझे। पास वाले कमरे में जाकर मौसीजी को पैर छूकर प्रणाम किया।

मौसीजी बोलीं, 'बस बेटा, बस करो। तुम्हारे पिता की बीमारी की खबर सुनकर चली आयी। तुम्हारे मौसाजी ने तो पूछ-पूछकर मेरा सिर खा डाला। कल से मुझसे बार-बार पूछ रहे हैं कि कैसी तबीयत है उनकी। तुम भी तो एक बार जाकर खबर दे आ सकते थे। मेरा मन भी तो छटपटाता रहता है ···'

न इन बातों के सुनने का ठीक वक्त था वह, न इनका जवाब देने का। चुनांचे चुप रहा मैं।

मौसीजी ने कहा, 'बैठो बेटा, बैठो। तुम्हारे मौसाजी खुद ही दौड़े चले आ रहे थे, मैंने ही मना किया। मैंने कहा, 'हाई ब्लड-प्रेशर है तुम्हें, तुम मत जाओ। मैं ही खबर लिए आती हूं।' वे वहां बेचैन हो रहे होंगे, मेरे पहुचते ही दौड़े आयेंगे। दो सौ तीस है ब्लड-प्रेशर उनका, डाक्टर ने हर तरह की परेशानी और फिक्र से बचने को कहा है। लेकिन तुम्हीं बताओ बेटा, इनसान बिना फिक्र-परेशानी के कभी रह सकता है? यह जो तुम्हारे पिता बीमार हैं, क्या यह फिक्र की बात नहीं है?'

फिर बड़े अन्तरंग भाव से पूछा, 'कौन-से डाक्टर तुम्हारे पिता को देख रहे हैं?'

बताया, 'सहाय राम बाबू।'

मौसीजी ने पूछा, 'बंगाली डाक्टर है?'

मैंने कहा, 'हां। हमारे मुहल्ले के नामी डाक्टर हैं, अच्छी प्रैक्टिस है, पिताजी को देख भी रहे हैं बहुत दिन से।'

'इनकी फीस कितनी है?'

बोला, 'सबसे सोलह रुपये लेते हैं। हम लोगों से बहुत पुरानी जान-पहचान है इसलिए फीस लेना ही नहीं चाहते। हम चार रुपये देते हैं···'

मौसीजी ने कहा, 'तुम्हारे मौसाजी में यही एक ऐब है कि वे देशी डाक्टर कतई नहीं पसंद करते। कहते हैं—'क्वैक हैं वे।'

मेरी समझ में नहीं आई बात।

मैंने कहा, 'देसी डाक्टर से क्या मतलब है आपका?'

मौसीजी ने कहा, 'तुम्हारे मौसाजी कलकत्ता के पासशुदा डाक्टरों के पास बिलकुल नहीं जाना चाहते। उस बार मेरे दांतों में दर्द हो गया था। मैंने कहा कि 'मामूली दांतों के दर्द के लिए विलायती डाक्टर के पास जाने की ज़रूरत नहीं। बेकार साठ रुपये ले लेगा।—तुम्हारे मौसाजी ने मेरी एक नहीं सुनी। ले गए चौरंगी इलाके के एक खास विलायती डिग्री वाले डाक्टर के पास।

ऐंठकर साठ रुपये ले लिए उसने…'

फिर थोड़ा रुककर बोलीं, 'नहीं बेटा, काम ठीक नहीं कर रहे हो। क्या नाम बताया, सहायराम बाबू न? तो उनकी डिग्री देसी है या विलायती?'

मैंने कहा, 'यहीं के मेडिकल कॉलेज के एम० बी० हैं।'

मौसीजी को जैसे बड़ा सदमा पहुंचा मेरी बात से।

बोलीं, 'नहीं बेटा, तुम किसी लंदन की डिग्री वाले डाक्टर को दिखाओ। बाप की जिन्दगी का सवाल है। कितनी तकलीफें झेलकर उन्होंने तुम लोगों की परवरिश की है, सोचा है इसे तुमने? और रुपया? बाप बड़ा है या रुपया? बताओ?'

मैं क्या जवाब देता? चुप रहा। सोचा कि शायद अब छुट्टी मिल जायगी। लेकिन मौसीजी की बातें ही नहीं खतम होतीं।

'तब तुम्हारे मौसाजी को जाकर क्या कहूं, बताओ तो?'

मैं बोला, 'मैं क्या बताऊं…'

'नहीं नहीं, तुम समझदार लड़के हो। मैं अगर जाकर यह कहूं कि तुम देसी डाक्टर से इलाज करा रहे हो, तब वे अपने हाई ब्लड-प्रेशर में अभी दौड़े चले आयेंगे यहां…'

मैं एकान्त भाव से मन ही मन यह प्रार्थना कर रहा था कि मौसीजी हमारे यहां अब और मिनट-भर भी न रुकें। मौसीजी के चले जाने पर ही जैसे मुझे राहत मिलेगी। ये अमीर रिश्तेदार मुसीबत में तो हमारी कोई मदद करेंगे नहीं, बल्कि उल्टे और मुसीबत में डालने के लिए ही जैसे हमेशा आमादा मालूम होते हैं।

'इससे बेहतर होगा बेटा, अगर एक काम करो, तब हाई ब्लड-प्रेशर लेकर तुम्हारे मौसाजी को यहां आने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तुम्हीं खुद चलो उनके पास एक बार। मेरे साथ गाड़ी तो है ही, ज्यादा देर नहीं लगेगी आने-जाने में। जिस डाक्टर को तुम्हारे मौसाजी कहें उसे ही दिखाओ। विलायती डिग्री वाले डाक्टर पैसा जरूर ज्यादा लेते हैं, पर हैं वे ही असली डाक्टर, रोग दूर करना वे ही जानते हैं। यह देखो उस अंग्रेज डाक्टर ने मेरे दांतों को बिलकुल ठीक कर दिया। उसने रुपये तो जरूर ज्यादा लिए थे लेकिन उसके बाद से मेरे दांतों में कोई और शिकायत नहीं है, अब मैं मजे में मुरगी की टांग चबा-चबाकर खाती हूं…'

मेरे कानों में तब मौसीजी की बातें नहीं जा रही थीं। खाली पिताजी का

ध्यान आ रहा था। थोड़ी ही देर बाद उन्हें एक खुराक दवा पिलानी है। हम जैसे गरीबों को न जाने कितनी समस्याएं हैं। और सिर्फ दवा ही नहीं पिलानी है। महानराम बाबू कह गए थे दिन में तीन बार खबर देने के लिए, उनके पास भी जाना है। फिर अपने पास जो थोड़े-से रुपये थे वे सब खत्म हो गए हैं। इधर-उधर से उधार लेकर काम चला रहा हूं। जो रुपयों से मेरी सहायता कर रहे हैं वे सब मेरे ही तबके के मामूली आदमी हैं। मौसाजी की तरह अमीर नहीं हैं। लेकिन इतना सब करके भी पूरा नहीं पड़ रहा है। दफ्तर के को-आपरेटिव बैंक से भी कल कुछ रुपये उधार लेना पड़ेगा लगता है। मेरे दिमाग में तब ये सब बातें घूम रही थीं।

याद है उस दिन बड़ी मुश्किल से नजात मिली थी मौसीजी की गिरफ्त में। सहज में नहीं। शायद होश में आने पर मुझे पिताजी ढूंढ रहे थे, उस समय।

मैंने कहा था, 'जा रहा हूं मौसीजी, कुछ खयाल न करें...'

लेकिन बात यहीं खतम नहीं हुई। जब तक पिताजी जीवित रहे तब तक मौसीजी मुझे इसी तरह परेशान करती रहीं।

सिर्फ यही कहती रहीं, 'यह इलाज ठीक नहीं हो रहा है री पंकजिनी, अपने लड़के को डाक्टर बदलने को कह—नहीं तो आखिर पछताना पड़ेगा, कहे देती हूं...'

और इसके पश्चात् पिताजी की मृत्यु के बहुत दिनों बाद तक मुझे मौसीजी का उलाहना सुनना पड़ा है कि मैंने ही पिताजी की उचित चिकित्सा न कराके मार डाला है।

मौसाजी पिताजी के श्राद्ध में आये थे। चूंकि आना पड़ता है इसलिए आए थे। आये थे सबके बाद में और गये सबसे पहले। लेकिन तथापि अपनी बातचीत से जता गये कि वे रायबहादुर और पी० एम० ओ० हैं।

उस दिन भी वे सूट-टाई में ही आये थे। अपनी विशाल कार से उतर-कर सभा को आलोकित किया था। चारों ओर भीड़ देखकर और किसीको पहचान न पाकर स्वगतोक्ति की थी, 'कहां, विसू कहां है?'

मुझे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते ही भीतर आये थे। शराफत के नाते मैं उन्हें देखते ही करीब पहुंच गया था।

सामने जाकर कहा था, 'आइये मौसाजी...'

मुझे देखकर जैसे वे निश्चिन्त हुए। कहा था, 'नहीं, अंदर नहीं आऊंगा।

कैसे हो ? तुम्हारी मां कैसी है ?'

बोला, 'आइए, अंदर आइए न, बहुत कातर हो गयी है मां...'

'होगी ही, कातर होना ही स्वाभाविक है। लेकिन मैं अंदर नहीं आ सकूंगा अब। अपनी मां को कह देना कि मैं आया था। तुम कुछ ख्याल न करना, मुझे विलंब हो गया थोड़ा। आज सर जॉन वुडहेड आये थे न, इसी सिलसिले में एक पार्टी थी गवर्नमेंट हाउस में...'

सर जॉन वुडहेड कौन हैं इसे कहीं मैं न समझ पाया होऊं, इसलिए उन्होंने खुद ही समझा दिया, 'सर जॉन वुडहेड कौन हैं, जानते हो ? बंगाल के गवर्नर के सेक्रेटरी, दिल्ली के वाइसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के मेम्बर, बड़े महान व्यक्ति हैं, बहुत पुरानी जान-पहचान है मुझसे, मैं जब राजशाही में था......'

विस्तृत विवरण देने लगे अपने कार्यकलाप और उच्च पद-मर्यादा के बारे में। मैंने कुछ सुना, कुछ नहीं सुना।

बोले, 'जानते हो, सर जॉन वुडहेड को मैंने देखा था सन् १९२१ में, सोचो, कितने पहले की बात है। लेकिन देखते ही पहचान लिया मुझे उसने। मुझे देखते ही बोला, 'हैलो, मुखर्जी...''

और इसके बाद ही शायद ख्याल आ गया वक्त का।

बोले, 'और नहीं, चलता हूं। मेरे यहां आना तुम एक दिन। तुम आते क्यों नहीं हो अब ?'

मैंने कहा, 'दफ्तर के बाद फुरसत ही नहीं मिलती बिल्कुल...'

मौसाजी ने पूछा, 'हां याद आया, तुम्हें वह नौकरी मिल गयी थी ? वही एक्साइज डिपार्टमेंट की नौकरी ?'

बोला, 'हां...'

'आखिर में शायद कैरेक्टर सार्टिफिकेट की जरूरत नहीं पड़ी होगी ?'

'हां, जरूरत पड़ी थी...'

मौसाजी ने पूछा, 'सार्टिफिकेट किससे लिया था ?'

मैंने कहा, 'मेरे पिताजी के एक दोस्त थे, जिन्हें हम लोग सरोज चाचा कहा करते थे। उन्होंने ही कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर से सार्टिफिकेट दिलवा दिया था...'

'पुलिस कमिश्नर से ? क्या नाम था उसका ? चार्ल्स टेगर्ट ?'

'नहीं, ब्रेल्ले साहब।'

मौसाजी बोले, 'ब्रेडले ? ब्रेडले फ्रेंड था मेरा। लंदन जाकर भी वह मुझे चिट्ठी लिखा करता था। तो ब्रेडले ने तुम्हें सार्टिफिकेट दे दिया ? तुम्हें पहले से जानता था क्या ?'

मैं बोला, 'नहीं।'

'तब ?'

मैंने कहा, 'मुझे नहीं जानता था, लेकिन सरोज चाचा को जानता था। सरोज चाचा के एक बार कहते ही सार्टिफिकेट दे दिया।'

मौसाजी तब तक अपनी गाड़ी के करीब पहुच चुके थे।

बोले, 'जानते हो, बड़ा रिस्की है यह। अनजाने आदमी को कैरेक्टर सार्टिफिकेट देने मे बडा खतरा होता है। उन लोगो का क्या है, वे राजा की बिरादरी के हैं। वे जो कुछ करें सो थोड़ा। मुसीबत तो है हम लोगो की' कहकर गाड़ी पर सवार हो गए। और मैंने भी राहत की सास ली।

•

बहुत दिन पहले की बात है यह। इसके बाद बहुत पानी बह गया है हावड़ा ब्रिज के नीचे से। बहुत-से परिवर्तन हुए हैं इसके बाद। सन् १९४७ की पन्द्रह अगस्त को अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए। रिटायर हो गये हैं मौसाजी एक मोटी रकम की पेन्शन लेकर। पेन्शन की उसी रकम को कम्यूट कराके एक मुश्त जो रुपया मिला उससे यादवपुर में एक बगीचेवाला बड़ा मकान बनवाया है। दूर चले जाने की वजह से अब मुलाकात नहीं होती।

लेकिन आज जो परिवर्तन मैं अपनी आंखो के सामने देख रहा हूं उसने सचमुच ही मुझे हतवाक् कर दिया।

समझ गया, मौसाजी को आने वाले चुनाव मे कांग्रेस का टिकट मिल गया है।

उनका भाषण उस समय भी चल रहा था भावपूर्ण स्वर मे : 'हम लोग बंगाली हैं, हमें गर्व है बंगाली होने का, हमें गर्व है इस बंगभूमि मे जन्म लेने का। और अगर आप लोग मुझे वोट देंगे तभी मैं आप लोगों की सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर सकूंगा, तभी मैं इस प्रदेश के निवासियो की आशा-आकाक्षा-स्वप्न को सफल बनाने की चेष्टा कर सकूगा। मेरी अपनी कोई क्षमता नही है। जैसे आप लोग चलायेंगे, वैसे ही चलूगा। आप लोग ही मेरे चालक होंगे। और मैं कुछ नही चाहता—सिर्फ यही चाहता हू कि मुझे वोट देकर आप लोग कांग्रेस को विजयी बनाइए। जय हिन्द…'

मन ही मन सोच रहा था कि मौसाजी अब इतनी अच्छी देसी भाषा (बंगला) कैसे सीख गये !

•

याद है मौसाजी उस बार चुनाव में पन्द्रह हजार वोटों से जीते थे और आखिर में कई साल के लिए मिनिस्टर भी बने थे। जब वे पी० एम० जी० थे तब उनके पास सार्टिफिकेट के लिए जाना पड़ा था और बैरंग लौट आना पड़ा था। लेकिन उनके मिनिस्टर बनने पर कभी उनके पास जाने की जरूरत नहीं पड़ी। और चूंकि जरूरत नहीं पड़ी, तभी अपनी दृष्टि में ही मैं अपनी मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रख सका।

घृणा हो गई है मुझे मनुष्य पर। न जाने कितनी बार मनुष्य की उपेक्षा भी की है, न जाने कितनी बार। चोट भी खाई है बहुत बार मनुष्य के हाथों से, तो भी मनुष्य पर से आस्था नहीं हटी है मेरी। तमाम आदमी अच्छे होंगे यह उम्मीद करना जितना गैरवाजिब है, उतना ही यह गुमान करना गैर-मुनासिब है कि तमाम आदमी खराब हो गए हैं। लाखों स्वार्थी-लोभी व्यक्तियों के साथ ही साथ केवल एक व्यक्ति के महान् त्याग के दृष्टान्त से मुझे बारम्बार प्रेरणा मिली है, सान्त्वना मिली है---यह क्या कोई कम उत्साह की बात है, कम आश्वासन की बात है।

इसी प्रकार के एक व्यक्ति का दृष्टान्त ही तो इतिहास को पिछले करोड़ों साल से आगे बढ़ाए लिए जा रहा है।

बेचू जैसे न जाने कितने आदमी अक्सर इधर-उधर दिखलाई पड़ जाते हैं। लेकिन इस तरह उन्हें देखने का मौका हासिल नहीं हुआ था। यह देखना नहीं था, यह था दर्शन। इसीका नाम दृष्टिपात भी है। आत्मरक्षा के लिए उसने बहुत-से गर्हित काम किए थे। हमदर्दी का भी बेहद नाजायज फायदा उठाया था। लेकिन सवाल यह है कि अगर बेचू जैसे आदमी न होते तब क्या दुनिया चलती ?

और मौसाजी ? मौसाजी की मक्कारी की शायद कोई इन्तिहा नहीं थी। सहज शालीनता को बनाए रखने के लिए बार-बार उन्हें नाना प्रकार की आत्मप्रवंचना का सहारा लेना पड़ा है, तरह-तरह के बहाने बनाने पड़े हैं। तो भी मौसाजी को मैं कैसे दोष दे सकता हूं ? जिस समाज का वे प्रतिनिधित्व करते हैं वहां आत्मप्रवंचना ही आत्मरक्षा करने की रीति है। जहां आत्मा बिकी हुई है वहां सहज शालीनता एक ढोंग मात्र है। इस ढोंग के

छद्मवेश को त्यागकर वे आदमी कैसे बन सकते हैं ? मौसाजी जैसे आदमी हैं तभी श्रेणी-संग्राम का पथ भी प्रशस्त है। और समग्र समाज की तरह समग्र मानव-जीवन ही इस संग्राम का कुरुक्षेत्र बन गया है। तभी देखता हूं कि इस संग्राम के कारण ही मनुष्य का अस्तित्व बना है, और बना रहेगा।

तृतीय

अब एक और संग्रामी की बात कहता हूं। बहुत ही मामूली आदमी था वह, वह केदार। केदार बोस। एक ही दफ्तर में हमारे साथ काम करता था। बड़ा बेबस, बड़ा गरीब, बड़ा बेचारा। हर दफ्तर में ही एक-दो ऐसे आदमी होते हैं जिनकी कोई तरक्की नहीं होती। वे जिस तनख्वाह पर नौकरी शुरू करते हैं, अन्त में उसीपर रिटायर भी होते हैं। उनमें कोई लियाकत है या नहीं, इसे साबित करने का कोई मौका ही नहीं मिलता उन्हें। संसार की अनेक विडम्बनाओं से संतप्त होकर वे ऑफिस के निश्चिन्त आश्रय में आकर भी विडम्बित होते हैं। मेरे दिल में बेहद हमदर्दी है इनके लिए। न जाने क्यों इनके साथ बहुत ज्यादा आत्मीयता अनुभव करता हूं मैं। लगता है इन्हींके लिए शायद दुनिया आगे बढ़ रही है। ये लोग हैं तभी बाहरी चकाचौंध पैदा करने वाली टीम-टाम को अब भी कोई ध्रुव सत्य मानने की भूल नहीं करता। इनके जीवन में भी कितनी अज्ञात ट्रेजेडी होती हैं, कौन जानने की कोशिश करता है उसे? इस नियमित जीवनयात्रा के अन्तराल में इनकी कितनी गंभीर समस्याएं छिपी रहती हैं उनका पता बाहरी लोगों को न लगने पर भी मुझे लगाना पड़ता है। ये ही मेरी चिन्ता के विषय हैं। ऐसे कितने बेशुमार केदार बोस अपने अस्तित्व को बनाए रखने की चेष्टा में निरन्तर संग्राम किए जा रहे हैं, इसे हम नहीं जानते, नहीं जाना चाहते। लेकिन जान सकने पर खुशी होती है। जानने पर ही उपलब्धि होती है कि मनुष्य अमृत है, मनुष्य मर नहीं सकता।

दरअसल इस केदार बोस की बात मैं भूल ही गया था इतने दिन।

केदार बोस का प्रसंग उठा उसके बेटे रूपरतन बोस की बात पर। कारण, केदार बोस के इस पुत्र के जन्म के बाद मैंने ही उसका नामकरण किया था—रूपरतन बोस।

सभी सभी बाबू के मुंह से उसका नाम सुनकर चौंक पड़ा।

'कौन? क्या नाम बताया?'

'रूपरतन बोस।'

सभी बाबू बोले, 'वही हम लोगों के जो केदार बोस थे उनका लड़का।

अब एक भारी सरकारी अफसर है। केदार बोस याद है न ?'

मेरे चेहरे की ओर देखकर शशी बाबू को अचरज हुआ। बोले, 'क्या सोच रहे है ? केदार बोस को नहीं याद कर पा रहे हैं ? हमारे दफ्तर का वही डी ग्रेड का केदार बोस। मेन्यूअल साहब ने नाराज होकर जिसका ट्रानजिट सेक्शन में तबादला कर दिया था। आपसे ही तो केदार बोस की ज्यादा घनिष्ठता थी।'

मैं शशी बाबू की बात का क्या जवाब देता। उस केदार बोस को ही अगर नहीं पहचानूगा तो किसे पहचानूगा ?

शशी बाबू कहने लगे, 'यही तो उनका सबसे छोटा लडका है। लेकिन नाम बडा बढिया रक्खा है, रूपरतन बोस।'

इतनी देर बाद मैंने कहा, 'आप ठीक जानते है कि यह केदार बोस का सबसे छोटा लडका है ?'

आश्चर्य ! वास्तव मे आश्चर्य की ही बात है। इतना आश्चर्य सम्भवतः मुझे कभी किसी विषय मे नहीं हुआ। अब तक ससार मे इतनी घटनाए, इतनी दुर्घटनाएं देखी है, पर ऐसी घटना जैसे इससे पहले ससार मे कभी नहीं घटी थी।

मैंने फिर पूछा, 'आप ठीक जानते है हम लोगो के उसी केदार बोस का लड़का है ?'

शशी बाबू बोले, 'वाह, मैंने पता जो लगाया था'' '

'तो आप उसके पास क्यो गए थे ?'

अरे, गया था मैं अपने लडके की नौकरी के लिए। मेरा मझला लडका पास करके बैठा है, सोचा कि रूपरतन बोस इतना बडा अफसर है, अगर इस मामले मे कोई मदद कर दे। तो क्या कहा उसने जानते हैं ? कहा कि अपने लडके को आप आर्मी मे भरती करा दीजिए। क्लर्की करते-करते बंगाली जाति बरबाद हो गई।'

शशी बाबू को आखिरी दिन तक नौकरी करके फिर एक्सटेन्शन मिल गया था। लेकिन अधिक उमर मे शादी करने की वजह से सभी बाल-बच्चे नाबालिग थे। लड़कियों की शादी और लड़कों की नौकरी के लिए उन्हें हर-दम परेशान रहना पड़ता था। रास्ते-पार्क, बस-ट्राम मे मुलाकात होने पर अपनी गाथा सुनाया करते थे। लड़कियो के नौशो की आलोचना करते। साधारण मध्यवित्त गृहस्थों की दुश्चिन्ताओं ने विभ्रान्त बना दिया था उन्हें।

इतने दिन इन्हीं वातों की सविस्तार चर्चा किया करते थे मुझसे। आज एका-
एक केदार वोस और उसके सबसे छोटे लड़के रूपरतन वोस की वात उनके
मुंह से सुनकर मैं हैरत में आ गया।

मुझे याद है कि मृत्यु के कुछ दिन पहले भी केदार वोस से मुलाकात हुई
थी मेरी। गाड़ी से जा रहा था सड़क पर। एकाएक पीछे से अपने नाम की
पुकार सुनकर जैसे ही मैंने मुड़कर देखा, देखा कि एक गाड़ी के भीतर केदार
वोस वैठा है। लेकिन वात होने से पहले ही ट्रैफिक-सिगनल में हरी रोशनी
जल उठी और गाड़ी चल दी। सिर्फ चलती हुई गाड़ी से चिल्लाकर वोला,
'आना एक दिन।'

मैं अचरज में पड़ गया था केदार वोस को कार में वैठा देखकर। तमाम
ज़िन्दगी केदार वोस गरीवी से लड़ता रहा है। वाल-व्रच्चों को खिलाने-पहनाने
की फिक्र में घुलता रहा है। केदार वोस मेरे सामने अकसर रोया है अपने
दुर्भाग्य को स्मरण करके। उसी केदार वोस को जीवन के अन्तिम दिनों में
कार में चढ़ते देखकर मुझे खुशी ही हुई थी। चलो अच्छा हुआ, केदार वोस
की हालत सुधर गई। नहीं तो ऐसी गाड़ी पर कैसे सवार होता ? विलकुल नई
चमचमाती है।

शशी वावू की वात से आज रहस्य का समाधान हुआ।

शशी वावू ने कहा, 'वात यह है जनाव, भाग्यवान का वोझ भगवान ढोता
है। नहीं तो मैन्युअल साहव ने जिस दिन केदार वोस का ट्रानज़िट सेक्शन में
ट्रान्सफर कर दिया, उस दिन क्या हमने सोचा था कि उसके भाग्य में इतना
सुख वदा है ?'

मैं वोला, 'आप रूपरतन वोस से मिले कैसे ?'

शशी वावू वोले, 'अरे, मैं क्या जानता था कि वोस साहव हमारे केदार
वोस के लड़के हैं। मैंने सोचा था वोस साहव और कोई वोस साहव हैं। वोस
साहव क्या समझते हैं कोई मामूली अफसर हैं ? भारत सरकार का जितना
रेक्रूटमेंट हो रहा है, वोस साहव ही उसके हेड हैं। खवर मिली थी कलकत्ते
में नया कमीशन आया है। पार्क स्ट्रीट में सव उम्मीदवारों का इम्तहान लेगा
वह। इम्तहान तो हज़ारों लड़के देंगे। कितने अमीर आदमियों के लड़के हैं
हम जैसे गरीवों के लड़कों को कमीशन क्यों पूछेगा ? तभी पहले से कहकर
थोड़ा इनफ्लुएन्स करने गया था, अगर इस तरह काम वन जाए……'

आश्चर्य ! फिर सोचने लगा अपने मन में, आश्चर्य। इसीको आश्चर्य

जनक घटना कहते हैं।

तब केदार बोस खुद ही क्या जानता था इसे ?

केदार बोस के रोने का वह दृश्य जैसे मेरी आंखों के सामने फिर आ गया। एकदम फूट-फूटकर रोने लगा था केदार बोस उस दिन। रास्ते में जमा लोगों के सामने शर्म-हया त्यागकर सचमुच फूट-फूटकर रो पडा था केदार बोस उस दिन।

केदार बोस उस दिन अपनी लज्जा की बात को और किसीसे न कह पाकर एकदम मेरे पास चला आया था।

उसने कहा था, 'भाई, बरबाद हो गया मैं। क्या होगा अब ?'

मैंने पूछा था, 'आखिर बात क्या है ?'

केदार बोस ने कहा था, 'तुम भाई, मुझे किसी तरह इस बार बचा लो, नहीं तो मर जाऊंगा मैं एकदम।'

बोला, 'बात क्या है ? क्या हुआ है तुम्हे ?'

केदार ने कहा, 'दफ्तर खतम होने के बाद चले मत जाना आज, सब बताऊंगा तुम्हे मैं।'

लड़के-बालों से भरा-पूरा घर था केदार बोस का, हालांकि कभी मैंने उसकी अच्छी हालत नहीं देखी। बराबर एक न एक झंझट लगा ही रहता था उसका। श्याम बाजार की एक गली के एक छोटे मकान में थी उसकी गिरस्ती।

केदार बोस कहता था, 'भाई, बडी मुश्किल में पड़ गया हू, दो रुपये उधार दे सकते हो ?'

इसी तरह कभी एक रुपया, कभी दो रुपये, यहा तक कि आठ आने तक उधार लेने में वह संकुचित नहीं हुआ है। दफ्तर के चपरासियों तक से वह उधार लेता था।

केदार बोस दफ्तर आता था एक थैला लेकर। दफ्तर खत्म होने के बाद बड़े बाजार से थोड़ी-बहुत शाकभाजी खरीद ले जाया करता था। इसके बाद घर जाकर लड़के-लड़कियों को पढ़ाने बैठता था।

कहा करता था, 'मास्टर रखने के पैसे तो है नहीं भाई, तभी अपने शरीर से जो कुछ बनता है, किए दे रहा हू।'

और केदार की बीवी की सेहत भी तब खराब थी। बेहद दुबली-पतली थी। लेकिन सुबह से शाम तक बिना खटे भी कोई चारा नहीं था उसको। हर साल बच्चे जन-जनकर आखिर में एनीमिया हो गया था उसे। अच्छे डाक्टर को

दिखाना और ठीक से दवा-दारू करना केदार बोस के बस की बात नहीं थी।

हम लोग सब कुछ जानते थे। हम लोग कहा करते थे, 'हर साल बिना नागा तुम्हारे बच्चे क्यों होते हैं, केदार ?'

केदार कहता, 'क्यों होते हैं इस बात को तुम लोग कैसे समझोगे भाई। मैं तुम लोगों को इसे नहीं समझा सकता।'

हम लोग इसे समझने की गरज़ भी नहीं महसूस करते थे।

गरीब आदमियों को यही एक बीमारी होती है, इसे हम सब जानते थे। इस विषय पर अधिक बात करके केदार बोस को हम परेशान नहीं करते थे। अगर ऐसा करते तो केदार बोस और लज्जित होता, और तकलीफ पाता।

लेकिन उस दिन केदार बोस का चेहरा देखकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ। बोला, 'रुपये चाहिए ?'

केदार ने कहा, 'नहीं भाई, वैसे रुपयों की तंगी मेरी ज़िन्दगी से कभी नहीं जाएगी, वह मेरे मरने के दिन तक रहेगी मेरे साथ।'

'तब फिर और कौन-सी नई विपत्ति आ गई ?'

केदार बोस बोला, 'दफ्तर से निकलते वक्त बताऊंगा।'

निदान, उस दिन दफ्तर से बाहर निकलकर केदार बोस ने कहा, 'अब सुनो, तुम्हें बतला रहा हूं, भाई। तुम्हें मैं सब बता दिया करता हूं, इस बात को भी नहीं छिपाऊंगा। और क्या फायदा होगा मुझे न कहकर। भाई, मेरी स्त्री के फिर बच्चा होगा।'

बोला, 'एं ! फिर ?'

केदार बोस सिर नीचा किए चलने लगा। कोई जवाब नहीं दिया मेरी बात का।

मैंने पूछा, 'कुल कितने हैं अब तक ?'

केदार बोस ने कहा, 'इसे लेकर सात हो जाएंगे।'

सात ! डेढ़ सौ रुपये में सात बच्चों के भरण-पोषण का दायित्व लेना मज़ाक नहीं। मैंने केदार बोस के चेहरे पर नज़र डाली। बड़ा करुण लग उसका चेहरा। यों ही सदा केदार बोस का चेहरा करुण ही बना रहता है, कोई न कोई समस्या उसे परेशान किए ही रहती है। तिसपर एक और न बढ़ती समस्या आ जुटी है यह।

फुटपाथों पर फेरीवालों की भीड़ रहती है, खास तौर से बड़े बाज़ार फुटपाथों पर। ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अपने माल को वि

रक्खा है सारी आमद-रफ्त की जगह पर। हो सकता है पुलिस से उनका समझौता हो गया है, इसलिए उन्हें कोई कुछ नहीं कहता।

भीड़ से अपने को बचाकर चलते-चलते केदार बोस फिर कहने लगा, 'भाई, समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूं। हर साल क्यों इतने बच्चे होते हैं, यह भी समझ में नहीं आता।'

बोला, 'तो अब क्या करने का इरादा है ?'

केदार बोस ने कहा, 'इसीलिए तो तुम्हें बताया है। यह सब बातें हरएक को तो बताई नहीं जा सकतीं।'

कुछ देर सोचने के बाद मैंने कहा, 'तुम्हारी स्त्री क्या कहती है ?'

केदार बोस बोला, 'स्त्री तो खाली मेरा ही कसूर देखती है। कहती है, 'तुम्हारे ही कारण यह दुर्गति हुई है।' भाई, तुम्हीं बताओ, क्या मेरे अकेले का ही है सारा कसूर ?'

इस बात पर हंसने की उमर नहीं थी तब मेरी। केदार की बात सुनकर हंसी नहीं आई, गुस्सा आया।

मैंने कहा, 'तुम कैसे हो केदार ? दफ्तर में इतना झंझट चल रहा है, मुल्क की हालत बिगड़ी हुई है, तुम्हें शर्म नहीं आती इस वक्त बच्चा पैदा करते ? तुम आदमी हो या जानवर ?'

केदार बोस ने मेरी ओर विपण्णभाव से देखा। बोला, 'मेरे गाल पर थप्पड़ मारो भाई। काश, थप्पड़ खाकर भी अगर अक्ल आ जाए।' कहकर उसने छलछलाती आंखों से मेरी ओर पुनः देखा। उसने कहा, 'खुदकुशी करके शायद छुटकारा पा सकता हूं इस पाप से। लेकिन खुदकुशी कैसे की जाती है मैं नहीं जानता, और न हिम्मत ही है मुझमें इसे करने की।' कहकर रास्ते की उसी भीड़ में रोने लगा केदार बोस।

बड़ी ममता जगी मेरे मन में केदार बोस को इस दशा में देखकर। केदार बोस को इस समय डांट-फटकारकर भी क्या होगा ?

उस दिन और ज्यादा बातें नहीं हुईं। अपनी चिन्ता में ही डूबा था केदार बोस। मुझसे थोड़ी सान्त्वना, थोड़ी सहानुभूति, थोड़ी सहायता पाने के उद्देश्य से ही उसने सारी बात बताई थी मुझे, उलटे मिली उसे फटकार।

घर जाते हुए मन में पछतावा हुआ। बजाय केदार बोस की मदद करने के उसको नुकसान ही पहुंचाया मैंने। कहीं सचमुच ही खुदकुशी न कर डाले! कहीं बस के पहियों के नीचे न डाल ले अपने को !

रात को घर लौटकर छटपटाने लगा मन ही मन।

फिर निकल पड़ा। पत्नी ने पूछा, 'अब कहां चले फिर ?'

बोला, 'एक काम है। घण्टे-भर में लौट आऊंगा...' कहकर चल दिया।

•

याद है, तब का कलकत्ता ठीक अब के कलकत्ते की तरह नहीं था। अब जिस तरह अभाव है, तब भी था अभाव। दुःख-दारिद्र्य, अभाव-अभियोग सदा से हैं, सदा रहेंगे। उस तीन रुपये मन चावल के जमाने में भी केदार बोस की तरह लाखों आदमी अपनी गिरस्ती मुश्किल से चला पाते थे। उस समय भी अन्न के अभाव में मिदनापुर इलाके में हर साल अकाल पड़ा करता था। अखबार में यह खबर पढ़कर आतंकित हो उठते थे हम। और यह भी याद है कि उस विपत्काल में हम पार्कों में मीटिंग किया करते थे, अंग्रेज़ सरकार को गालियां देते थे। हम सोचा करते थे कि अंग्रेजों के चले जाते ही फिर रामराज लौट आएगा हमारे यहां।

केदार बोस हमारे उस युग का शिकार था। पर अंग्रेजों में चाहे जो दोष हों, बच्चे को जन्म देना तो मां-बाप का ही अपराध है। अंग्रेज तो आखिर हुक्म देकर हमसे जबरदस्ती बच्चा नहीं पैदा करवाते थे।

इसीलिए मेरा सारा गुस्सा जा पड़ा था केदार बोस पर।

रात काफी देर हो गई थी तब। अन्दाज़ से पहचानता था मैं केदार बोस का डेरा। गैस की रोशनी टिमटिमा रही थी। उसी अल्प प्रकाश में बड़ी मुश्किल से मैंने केदार बोस के डेरे का पता लगाया।

दरवाज़ा खटखटाते ही किसीने आकर खोल दिया। देखा कि एक छोटा-सा लड़का है। पीछे-पीछे और भी कुछ कम उमर के लड़के-लड़कियों की भीड़ आ खड़ी हुई।

'कौन हो ? कौन हो तुम ?'

मैंने कहा, 'क्या यह केदार बाबू का घर है ? वे हैं घर पर ?'

एकसाथ सब बोल उठे, 'हां, हां। कौन हो तुम ?'

उन बच्चों का यह बरताव मुझे कतई पसन्द नहीं आया। उनमें शिक्षा-दीक्षा का अभाव पाकर, उनकी अशालीनता देखकर मुझे बुरा लगा। केदार बोस भी क्या कर सकता है ? अपनी डेढ़ सौ रुपये की तनख्वाह में इससे ज़्यादा करने की औकात ही कहां है बेचारे में ? मकान का किराया है, इतने बच्चों के खाने-कपड़े का बोझ है, फिर सबके ऊपर है हारी-बीमारी।

किसी औरत के भीतर से चिल्लाने की आवाज़ आई, 'कौन है रे भोंदू ? कौन आया है ?'

कहते हुए वह औरत बाहर आई। स्तम्भित हो गया मैं उसका चेहरा देखकर। बीमार कहने पर लगेगा कि उसकी हालत का बयान घटाकर किया गया है। सारा रक्त-मास जैसे शरीर के बीचोंबीच केन्द्रीभूत हो गया था जिससे विकट आकृति बन गई थी उस स्त्री की।

उस दिन मैं वहा अधिक देर तक नही रुका, इसमें मेरा कसूर नहीं है। सचमुच असह्य हो गया था मेरे लिए वहा ठहरना। केदार बोस को देखा है मैंने, उसकी गरीबी का अन्दाजा लगाने की भी कोशिश की है। लेकिन वह गरीबी इतनी पैनी है इसका मुझे गुमान तक नही था।

'आप कहाँ से आ रहे है ?'

किसी तरह कहा मैंने, 'हम लोग एक ही दफ्तर मे काम करते हैं।'

जब मैं गली के बाहर निकल आया तब ही सचमुच जैसे मैंने राहत की सांस ली। वह अंधेरी-घुप्प कोठरी, वह मर्मांतक दारिद्र्य जैसे मेरा दम घोटे दे रहा था। तब भी मुझे लग रहा था जैसे केदार बोस की स्त्री की प्रेतमूर्ति मुझे ग्रसने दौड़ी चली आ रही है। मैंने बाहर के ट्राम-वे पर आकर मुक्ति का अनुभव किया।

लेकिन आखिर केदार बोस कहा चला गया ? उसे जिस हालत मे मैंने छोड़ा था उसमें आत्महत्या का प्रयत्न करना अस्वाभाविक नहीं होगा। कब का निकला है दफ्तर से, तो भी इतनी देर हो रही है घर लौटने मे !

रास्ते के मोड पर खडा रहा कुछ देर, यहीं से तो वह अपने घर जायगा। लेकिन जब उसका कोई सुराग न मिला तब फिर चलने लगा अपने घर की ओर। घड़ी देखी। रात के दस बजे थे।

एकाएक एक जगह आकर देखा कि बिलकुल केदार बोस ही जैसे खडा है कोई। रास्ते के बिजली के खंभे की ओर मुह किये एक विज्ञापन पढ़ रहा है। हो सकता है कि कोई दवा का विज्ञापन हो।

पीठ पर हाथ रखकर बोला, 'क्या बात है केदार ? यहा क्या कर रहे हो ?'

केदार पीछे मुडा। मैं चौंक पडा।

बोला, 'माफ कीजिए, मैंने सोचा था केदार बोस हैं आप…'

कहकर सलज्ज भाव से क्षमा मागकर फिर अपने घर की ओर चल पड़ा।

अगले दिन दफ्तर में पहुंचते ही पहले ट्रांजिट सेक्शन में गया। देखा कि केदार बोस बैठा है उदास। मैंने कहा, 'कल तुम्हारे घर गया था मैं। कहां थे तब तुम ?'

केदार बोस बोला, 'पता है मुझे।'

'आखिर थे कहां तुम इतनी देर ? कहां गये थे ?'

केदार बोस चुप रहा। मैं भी और बात न बढ़ाकर अपनी जगह चला आया।

लेकिन घर जाने से पहले फिर जाकर पकड़ा मैंने केदार बोस को। एक-एक करके सब जब घर चले गये, तब हम दोनों बाहर निकले। उस दिन की तरह बातें नहीं कर रहा था आज केदार बोस।

मैंने पूछा, 'क्या निश्चय किया ?'

केदार बोस ने कहा, 'कल एक जने के यहां गया था।'

'किसके यहां ?'

थोड़ा हिचककर केदार बोस बोला, 'एक डाक्टर के यहां।'

'डाक्टर के यहां ? किस डाक्टर के यहां ?'

केदार बोस ने कहा, 'तुम्हारे चले जाने के बाद मैं घर की ओर ही जा रहा था। लेकिन भाई, मेरे पैर उधर नहीं बढ़ना चाहते थे। सोचा कि जाकर होगा भी क्या ! जाकर उन नालायकों को ही तो देखूंगा। एक ही बच्चे को खिलाने की सामर्थ्य नहीं है, उसके ऊपर इतने बच्चों का बोझ कैसे संभाल सकता हूं ? और फिर एक और आ रहा है ''यही सब सोचते-सोचते घर की ओर न जाकर बाग बाज़ार के नाले की तरफ चलने लगा। जगह परिचित है मेरी, काफी निराली जगह है। सोचा कि इस निराले स्थान में जाकर बैठूंगा कुछ देर, दिमाग ठिकाने आ जायगा शायद तब…'

'फिर ?'

'बाग बाज़ार की ओर जा रहा था कि रास्ते में इलेक्ट्रिक पोस्ट पर लगे एक छोटे विज्ञापन पर नजर पड़ी। इसका नाम किस्मत है भाई। इतने अंधेरे में मुझे वह विज्ञापन नहीं नजर आना चाहिए था। शायद भगवान को दया आ गयी थी मुझे दुःखी देखकर। हो सकता है भगवान ने सोचा हो कि बेचारा बड़ी तकलीफ में है, उसे बचा लिया जाय। फिर बाग बाज़ार नहीं गया। जल्दी से पता एक कागज़ पर नोट करके बस पर चढ़ गया। कहां बाग बाज़ार और कहां मानिकतला।'

'तो मानिकतला गये ? इतनी रात को ?'

केदार बोस बोला, 'न जाता ? तब अगर मुझे कोई जहन्नुम में भी जाने को कहता, तो भी मैं चला जाता—पीछे नहीं हटता इसके लिए भी।'

'इसके बाद ?'

'इसके बाद मानिकतला गया। पर मकान ढूंढ निकालना क्या मामूली बात थी ? अली-गली में घूमते-घूमते परेशान होकर आखिर में डाक्टर का मकान मिला। लेकिन तब काफी रात हो चुकी थी। डाक्टर बाबू को पुकारूं या न पुकारूं, सोचने लगा। इतनी रात गये पुकारने पर शायद बुरा मानें। पर फिर सोचा, डाक्टर के लिए रात और दिन का क्या सवाल है ? आखिरकार दरवाजा खटखटाते ही एक आदमी ने दरवाजा खोल दिया।

'मैंने कहा, 'डाक्टर बाबू हैं ?'

'उस आदमी ने कहा, 'नहीं, वे कॉल पर गए हैं।'

''कब लौटेंगे ?'

'उसने कहा, 'इसका कोई ठीक नहीं। आप कल आइए। थोड़ा और जल्दी आइए कल।'

'समझ गया डाक्टर बहुत नामी है। मानो मुझ जैसे मरीजों की कमी नहीं है इस मुल्क में। तब मैं और क्या करता, वापस लौट आया। कह आया कि कल दफ्तर खतम होने के बाद आऊंगा। तभी वहां जा रहा हूं।'

मैंने पूछा, 'डाक्टर है तो अच्छा ?'

केदार बोस ने कहा, 'यह तो नहीं जानता मैं। सिर्फ बिजली के खंभे पर चिपके विज्ञापन को देखकर गया था। आओ, चलो न मेरे साथ।'

याद है, उस दिन केदार बोस को मैंने अकेला छोड़ना मुनासिब नहीं समझा था। अर्थात् यही कि उसकी विपत्ति में थोड़ी सहायता करना चाहा था। अन्त में उसके साथ मानिकतला गया था मैं।

उस डाक्टर की बात भी याद आ रही है आज। वह डाक्टर था भी वैसा ही डाक्टर ! आज भी शक होता है कि वह डाक्टर था या वैद्य। मुझे लगा कि शायद वह वैद्य था। वैसे वैद्य भी तो डाक्टर ही होता है। अगर वह अपने को डाक्टर कहता है तो कोई उसे दोष नहीं दे सकता।

घर के भीतर घुसते ही मुझे शुबहा हुआ था। डाक्टर बाबू एक बड़ा-सा हुक्का पी रहे थे।

संकुचित भाव से केदार बोस ने अपने केस को बताया।

डाक्टर ने पूछा, 'कितने महीने हो गये ?'

केदार वोस ने कहा, 'जी, सात महीने।'

'वहुत देर कर दी है आपने। पर मेरे पास जव आ गए हैं तव डरने की कोई वात नहीं रही अव। पहले आये होते तो काम सहज में हो गया होता। अव आपका खर्चा कुछ ज़्यादा पड़ जायगा, यही वात है…'

'कितना पड़ेगा खर्चा ?'

डाक्टर ने कहा, 'कुल चार सौ रुपये देने पड़ेंगे। और पहले अगर आये होते तो पचास रुपये में काम हो जाता……'

'चार सौ रुपये ?'

केदार वोस जैसे वज्राहत होकर ज़मीन पर वैठ गया। वोला, 'इससे कम में नहीं होगा ?'

डाक्टर ने कहा, 'गड़वड़ तो आप ही कर वैठे हैं, नहीं तो गुनाह की यह सज़ा नहीं भोगनी पड़ती।'

केदार वोस ने कहा, 'अव कितना देना पड़ेगा ?'

डाक्टर ने कहा, 'जैसे-जैसे मैं दवा दूंगा वैसे ही आप रुपया देते जायेंगे। एक शीशी दवा की कीमत सौ रुपये है। लगता है चार शीशी में ही हो जायगा काम। और आपकी किस्मत अगर अच्छी हुई तो दो शीशी में ही दूर हो जायगा रोग।'

स्त्री को ? अगर आखिर में कोई खराबी हो गयी तो क्या होगा ?'

केदार बोस ने कहा, 'लेकिन मेरे लिए अब इसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं। किसी और को मैं जानता भी तो नहीं हूं।'

'और रुपयों का क्या इतज़ाम होगा ? रुपये हैं तुम्हारे पास ? चार सौ रुपये कहां से जुटाओगे ? कल ही तो कहता है सौ रुपये चाहियें। दे सकोगे ?'

केदार बोस बोला, 'सौ पैसे भी नहीं हैं मेरे पास, सौ रुपये तो दूर की बात है।'

'तब क्या करोगे ? स्त्री के गहने बेचोगे ?'

केदार बोस ने जवाब दिया, 'स्त्री के गहने हो तब तो !'

'लेकिन तब क्या करोगे ?'

'करूंगा और क्या ! चोरी करूंगा। राहज़नी करूंगा। मूल बात यह है कि जैसे भी बने, मुझे कल रुपयों का इतज़ाम करना ही पड़ेगा। इसके अलावा और कोई चारा नहीं है मेरे लिए। तुम दे सकते हो कुछ ?'

मैं बोला, 'कुछ दे सकता हू, लेकिन उससे तो तुम्हारा काम चलेगा नहीं।'

केदार बोस सिर नीचा किए मेरे साथ-साथ चल रहा था। सम्भवत अपनी चिन्ता में चचल हो गया था उसका चित्त। मेरी बात का कोई जवाब न देकर चुपचाप चलता रहा।

अंत में बोल उठा, 'जो भी हो, चार सौ रुपये का इतज़ाम मुझे करना ही पड़ेगा…'

उस दिन और ज़्यादा बातें न हो सकीं। बातें करके फायदा भी क्या होता ? उतने रुपये भी तो नहीं थे मेरे पास कि मैं उसकी सहायता कर सकता। केदार बोस की हालत और हम लोगों की हालत में तब ऐसा कोई खास फर्क भी नहीं था। फर्क सिर्फ इतना ही था कि केदार बोस के बाल-बच्चों की तादाद ज़्यादा थी।

आखिर में दफ्तर के एक चपरासी से दो सौ रुपये उधार लिए केदार बोस ने। मैंने ज़मानत दी। और बाकी रुपये उसे उधार के तौर पर दफ्तर के कुछ लोगों ने मिलकर दिये। केदार बोस अगले दिन ही वैद्यजी को रुपये दे आया और दवा भी ले आया।

मुझे भी बहुत कुतूहल हुआ। मैंने पूछा, 'दवा खिलाई तुमने अपनी स्त्री को ?'

केदार बोस ने कहा, 'खिलाने की दवा नहीं है भाई, लगाने की है। दवा

लगाने पर बहुत जलन होती है, लगाना नहीं चाहती मेरी स्त्री।'

मैं बोला, 'लेकिन न लगाने से काम कैसे चलेगा ?'

केदार बोस ने कहा, 'मैंने भी तो यही बात कही है स्त्री से। मैंने कहा है कि इतनी कीमती दवा है, थोड़ी तकलीफ बरदाश्त करके लगाती रहो।'

'तब क्या कहा उसने ?'

'कहेगी क्या भाई ! सब कुछ तो देखता हूं अपनी आंखों से। बाल-बच्चों की एक पल्टन है मेरी गिरस्ती में, ऐसी गिरस्ती में आराम से लेटी तो नहीं रह सकती बेचारी। गिरस्ती तो बीमारी की बात सुनेगी नहीं। लिहाजा अकेले ही सारा काम करना पड़ता है, रेस्ट बिलकुल नहीं मिलता।'

मैं बोला, 'इसी तरह तो काम करती आई है अब तक वह...'

केदार ने कहा, 'पहले परिश्रम किया है क्या इसलिए हमेशा कर सकता है कोई ? बच्चा जन-जन के उसके शरीर में क्या अब कुछ बाकी है ? फिर मैं अच्छा पौष्टिक भोजन भी तो नहीं दे पाता। वैसी औकात होती तो भी एक बात थी।'

'वैद्य क्या कहता है ?'

'कहता है कि सब ठीक हो जायगा। हजारों मरीज़ उनकी दवा लगाकर फायदा उठा रहे हैं, तब मेरी स्त्री को क्यों नहीं होगा ? मुझे तो बहुत भरोसा मिला है भाई। मैं कान पकड़ के प्रतिज्ञा करता हूं कि और कभी ऐसा काम नहीं करूंगा, यही अन्तिम पाप है मेरा। बहुत नसीहत मिल चुकी है मुझे।'

केदार बोस को देखकर भी लगा कि सचमुच वह थोड़ा आश्वस्त हो गया है अपने मन में। काफी हलका महसूस कर रहा है पहले की बनिस्बत।

मैं भी और कुछ न कहकर अपनी सीट पर चला आया। वह हलका महसूस कर रहा है यह अच्छी बात है। केदार बोस की मुसीबत में शिरकत नहीं कर पाया था इसलिए अफसोस था मन में। केदार बोस का अगर कुछ भला हो जाता इससे मेरा यह अफसोस भी थोड़ा कम हो जाता। मेरी दुश्चिन्ता इसीलिए थी।

देख रहा था कि दिन-ब-दिन केदार बोस जैसे सूखता चला जा रहा है। चेहरे, मन, सेहत सब तरफ से लाचार मालूम होता था। दफ्तर आता, अपना काम करता और मुझसे बचकर न जाने कब चुपचाप घर चला जाता।

उस दिन एकाएक मैंने उसे पकड़ लिया।

मैंने कहा, 'क्या खबर है ? कई दिन से तुम्हें पकड़ने की कोशिश कर

रहा था।'

केदार बोला, 'जी अच्छा नहीं है'

'क्यों ? क्या हुआ ? वैद्यजी की दवा में फायदा नहीं हुआ ?'

केदार बोस ने कहा, 'तकलीफ में छटपटा रही है मेरी बीवी—सो नहीं पाती तमाम रात, मैं भी नहीं सोता...'

मैं बोला, 'वैद्य क्या कहता है ?

केदार बोस ने कहा, 'दवा बदल दी है।'

'क्यों ? उस दवा से कुछ नहीं हुआ ?'

'वैद्यजी ने कहा कि एक और अच्छी दवा दे रहा हूं इस बार। थोड़ा और ज्यादा कीमती।'

'तकलीफ कम हुई ?'

'नहीं भाई, और बढ़ गयी लगती है। समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूं।' कहकर निराशा में टूट-सा गया केदार बोस।

मैंने कहा, 'चलो, मैं भी वैद्यजी के यहां चलूंगा तुम्हारे साथ।'

केदार बोस की हिम्मत बढ़ाने के लिए ही मानिकतला गया था मैं उस दिन। याद है, वैद्यजी ने दिलासा ही दिया था उस दिन। कहा था, 'इण्डिया-भर से मरीज़ आते हैं साहब, और आप लोग कहते हैं कि मर्ज अच्छा नहीं होगा ? अगर यह मर्ज ठीक न हुआ तो मैं इलाज करना ही छोड़ दूंगा।'

मैंने पूछा, 'तब तकलीफ क्यों हो रही है ?'

वैद्य जी ने कहा, 'रोग होने पर तकलीफ तो थोड़ी-बहुत होगी ही साहब। बच्चा पैदा करने की क्रिया में जब मज़ा लूटा है, तब उसे खतम करते वक्त अगर थोड़ी तकलीफ बरदाश्त नहीं करेंगे तो कैसे काम चलेगा ? और जब एक-दो महीने का था तब क्यों नहीं आये ? अब मर्ज पुराना पड़ गया है।'

केदार बोस बोला, 'इस तकलीफ को अगर थोड़ा आप कम कर देते...'

वैद्यजी ने उसी दिलासे के ढंग से कहा, 'ज़रूर कम होगी, इतना अधीर होने से कैसे चलेगा काम ?'

वैद्यजी से ज्यादा बातें करने का वक्त भी नहीं मिलता था। बाहर के कमरे में भीड़ लगी रहती थी मरीज़ों की जो अंदर जाने की ताक में बैठे रहते। एक मरीज़ के बाहर निकलते ही फौरन दूसरा अंदर जाता। तनिक भी ठहरना नहीं चाहता था कोई। क्या इतने आदमियों की यही एक समस्या थी ? क्या सबकी ही केदार बोस जैसी समस्या थी ?

ने पर बहुत जलन होती है, लगाना नहीं चाहती मेरी स्त्री।'
मैं बोला, 'लेकिन न लगाने से काम कैसे चलेगा ?'
केदार बोस ने कहा, 'मैंने भी तो यही बात कही है स्त्री से। मैंने कहा है कि इतनी कीमती दवा है, थोड़ी तकलीफ बरदाश्त करके लगाती रहो।'
'तब क्या कहा उसने ?'
'कहेगी क्या भाई ! सब कुछ तो देखता हूं अपनी आंखों से। बाल-बच्चों की एक पल्टन है मेरी गिरस्ती में, ऐसी गिरस्ती में आराम से लेटी तो नहीं रह सकती बेचारी। गिरस्ती तो बीमारी की बात सुनेगी नहीं। लिहाज़ा अकेले ही सारा काम करना पड़ता है, रेस्ट बिलकुल नहीं मिलता।'
मैं बोला, 'इसी तरह तो काम करती आई है अब तक वह...'
केदार ने कहा, 'पहले परिश्रम किया है क्या इसलिए हमेशा कर सकता है कोई ? बच्चा जन-जन के उसके शरीर में क्या अब कुछ बाकी है ? फिर मैं अच्छा पौष्टिक भोजन भी तो नहीं दे पाता। वैसी औकात होती तो भी एक बात थी।'
'वैद्य क्या कहता है ?'
'कहता है कि सब ठीक हो जायगा। हजारों मरीज़ उनकी दवा लगाकर फायदा उठा रहे हैं, तब मेरी स्त्री को क्यों नहीं होगा ? मुझे तो बहुत भरोसा मिला है भाई। मैं कान पकड़ के प्रतिज्ञा करता हूं कि और कभी ऐसा का[म] नहीं करूंगा, यही अन्तिम पाप है मेरा। बहुत नसीहत मिल चुकी है मुझे।'
केदार बोस को देखकर भी लगा कि सचमुच वह थोड़ा आश्वस्त हो[कर] है अपने मन में। काफी हलका महसूस कर रहा है पहले की बनिस्बत।
मैं भी और कुछ न कहकर अपनी सीट पर चला आया। वह हलका [मह]सूस कर रहा है यह अच्छी बात है। केदार बोस की मुसीबत में शिरक[त] कर पाया था इसलिए अफसोस था मन में। केदार बोस का अगर कुछ [...] हो जाता इससे मेरा यह अफसोस भी थोड़ा कम हो जाता। मेरी दु[...] इसीलिए थी।
देख रहा था कि दिन-ब-दिन केदार बोस जैसे सूखता चला जा[ता] चेहरे, मन, सेहत सब तरफ से लाचार मालूम होता था। दफ्तर आ[कर] काम करता और मुझसे बचकर न जाने कब चुपचाप घर चला जात[ा]।
उस दिन एकाएक मैंने उसे पकड़ लिया।
मैंने कहा, 'क्या खबर है ? कई दिन से तुम्हें पकड़ने की

रहा था।'

केदार बोला, 'जी अच्छा नहीं है '

'क्यों ? क्या हुआ ? वैद्यजी की दवा से फायदा नहीं हुआ ?'

केदार बोस ने कहा, 'तकलीफ से छटपटा रही है मेरी बीवी—सो नहीं पाती तमाम रात, मैं भी नहीं सोता ···'

मैं बोला, 'वैद्य क्या कहता है ?

केदार बोस ने कहा, 'दवा बदल दी है।'

'क्यों ? उस दवा से कुछ नहीं हुआ ?'

'वैद्यजी ने कहा कि एक और अच्छी दवा दे रहा हू इस बार। थोड़ा और ज्यादा कीमती।'

'तकलीफ कम हुई ?'

'नहीं भाई, और बढ़ गयी लगती है। समझ में नही आ रहा है कि क्या करूं।' कहकर निराशा से टूट-सा गया केदार बोस।

मैंने कहा, 'चलो, मैं भी वैद्यजी के यहा चलूगा तुम्हारे साथ।'

केदार बोस की हिम्मत बढ़ाने के लिए ही मानिकतला गया था मैं उस दिन। याद है, वैद्यजी ने दिलासा ही दिया था उस दिन। कहा था, 'इण्डिया-भर से मरीज आते हैं साहब, और आप लोग कहते है कि मर्ज अच्छा नहीं होगा ? अगर यह मर्ज ठीक न हुआ तो मैं इलाज करना ही छोड दूगा।'

मैंने पूछा, 'तब तकलीफ क्यों हो रही है ?'

वैद्य जी ने कहा, 'रोग होने पर तकलीफ तो थोड़ी-बहुत होगी ही साहब। बच्चा पैदा करने की क्रिया मे जब मजा लूटा है, तब उसे खतम करते वक्त अगर थोड़ी तकलीफ बरदाश्त नही करेंगे तो कैसे काम चलेगा ? और जब एक-दो महीने का था तब क्यों नहीं आये ? अब मर्ज पुराना पड गया है।'

केदार बोस बोला, 'इस तकलीफ को अगर थोडा आप कम कर देते···'

वैद्यजी ने उसी दिलासे के ढग से कहा, 'जरूर कम होगी, इतना अधीर होने से कैसे चलेगा काम ?'

वैद्यजी से ज्यादा बातें करने का वक्त भी नहीं मिलता था। बाहर के कमरे मे भीड़ लगी रहती थी मरीजों की जो अंदर जाने की ताक में बैठे रहते। एक मरीज के बाहर निकलते ही फौरन दूसरा अंदर जाता। तनिक भी ठहरना नहीं चाहता था कोई। क्या इतने आदमियो की यही एक समस्या थी ? क्या सबकी ही केदार बोस जैसी समस्या थी ?

यह सब क्या आज की वात है ! कौन जानता था कि वही केदार वोस अपने लड़के की खरीदी गाड़ी पर चढ़के घूमेगा ! कौन जानता था कि केदार वोस एक दिन शशीपद के काम आयेगा ! तव की सातें सोचने पर भी मैं ही आ जाना पड़ता है आज, विस्मय में हतवाक् हो जाना पड़ता है।

हालांकि आज जव 'लूप' के वारे में अखवारों में पढ़ते हैं, उसका विज्ञापन देखते हैं, तव उस ज़माने से आज की तुलना करने की तवियत तो होती ही है। आज के केदार वोस क्या उस जमाने के केदार वोसों की वनिस्वत खुशहाल हैं ? आज के केदार वोसों का जीवन क्या शान्तिमय है, सुखी है ?

आज शशीपद के मुंह से रूपरतन वोस की वात सुनकर सवसे ज़्यादा अचंभा मुझे ही होना चाहिए।

याद है, श्मशान में खड़े होकर भी केदार वोस विलख-विलखकर रोया था।

उसने कहा था, 'मैं भी और ज़्यादा दिन नहीं जीऊंगा भाई, मुझे भी जल्दी ही लाकर चिता पर सुलाना पड़ेगा।'

मैंने यथारीति उसे सान्त्वना दी थी। श्मशान जैसे शोक का स्थान है, वैसे ही सान्त्वना का भी। श्मशान का शोक तो प्रकृत होता है, किन्तु सान्त्वना कृत्रिम। मैंने केदार वोस को उसी तरह सांत्वना दी थी, जिस तरह दी जाती है, जिस तरह देने की रीति है। पर वह सांत्वना यदि उस दिन मैं अपने-आपको देता तो ज़्यादा अच्छा होता।

श्मशान में ले जाने के पहले के एक महीने का अरसा केदार वोस का किस तरह कटा था, अव इसे सोचने पर भी सिहर उठना पड़ता है। तव के दुःख-दर्द का हाल और सव के जानने पर भी वह रूपरतन वोस तो उसे नहीं जानता। रूपरतन वोस आज सरकार का रेक्रूटिंग ऑफिसर है। उसे फौज में रंगरूट भरती करना है, ज़्यादा से ज़्यादा, जितना हो सके। भारत सरकार की सैनिक शक्ति की वृद्धि न कर सकने पर रूपरतन वोस की नौकरी नहीं रहेगी।

पर वह रूपरतन वोस तव कितना-सा था ? हाल ही में पैदा हुआ था वह। मैं कैंसर अस्पताल में केदार वोस की स्त्री को देखने गया था। अन्त में उस वैद्य की दवा लगाकर केदार वोस की स्त्री को कैन्सर हो जायगा इसकी कल्पना तव कौन कर सकता था ?

शोक का प्रभाव क्रमशः दूर हो जाता है, एक अज़ीज़ की मौत का सदमा भी कुछ अरसे वाद वरदाश्त होने लगता है। लेकिन वरदाश्त करने की यह

ताकत पहले-पहल देखी थी मैंने केदार बोस में।

याद है रूपरतन बोस नाम मैंने ही रखा था।

केदार बोस ने कहा था, 'बिना मा के लड़के का इतना भड़कीला नाम क्यों रखा भाई ?'

मैंने कहा था, 'क्या हर्ज है, लड़के की वजह से तो तुम्हारी औरत नहीं मरी है, वह मरी है तुम्हारी वजह से। तब वह क्यों भोगे तुम्हारे लिए ?'

श्मशान में जब चिता धाय-धाय जल रही थी, तब केदार बोस चुपके-चुपके गंगा के घाट की ओर चला जा रहा था। किसीने नहीं देखा उसे। मैंने उसका पीछा किया। किनारे के करीब जाते ही मैंने उसे पीछे से पकड़ लिया।

केदार बोस पीछे मुड़ा।

मैं बोला, 'कहा जा रहे हो ?'

केदार बोस ने कोई जवाब नहीं दिया। आखें फाड़कर मेरी ओर देखता रहा।

मैंने कहा, 'छी: शर्म नहीं आती तुम्हें ?'

तो भी जवाब नहीं दिया केदार बोस ने।

मैंने कहा, 'भूल क्यों रहे हो कि तुम्हारे इतने बाल-बच्चे हैं ? सात-सात जीवन तुम्हारा मुंह जोहे बैठे हैं ?'

उस दिन यहीं तक। मैं वापस लौटा लाया उसे फौरन। लाकर अन्त्येष्टि क्रिया हो जाने के बाद उसे खुद उसके घर पहुंचा आया।

•

और, इसके बाद ?

इसके बाद लुके-छिपे केदार बोस एक दिन फिर शादी कर बैठा। यह बात उसने मुझे नहीं बतायी थी। तब उसने हमारे दफ्तर की नौकरी भी छोड़ दी थी। प्रॉविडेंट फण्ड का रुपया पाने के लिए नौकरी छोड़ने के अलावा और कोई रास्ता भी नहीं था उसके लिए। उधार लिया रुपया आखिर कितने दिन न देता।

मुझे भी और वक्त नहीं मिला केदार बोस से मिलने का। वर्तमान जगत् में हमारी स्थिति विच्छिन्न द्वीपों की तरह है। पारस्परिक सम्पर्क बनाए रखना भी दुष्कर होता जा रहा है विभिन्न कारणों से। मेरे कान में सिर्फ यही बात आई थी कि केदार बोस ने प्रॉविडेंट फण्ड के कई हजार रुपये निकालकर फिर शादी कर ली है। और अन्त में एक दिन उसे दूर से उम्र

में देखा था पर बातें नहीं हुई थीं। मैंने सोचा था शायद उसके किसी
की होगी गाड़ी। और यह भी खयाल आया था मन में कि उसकी
हाली वाकई एक खुशी की बात है। खुद वह अपनी हालत न दुरुस्त कर
तो क्या हुआ, बेटे की खुशहाली ही बाप की भी खुशहाली होती है।
और इतने दिन बाद शशी बाबू के मुंह से रूपरतन बोस का नाम सुनकर
र केदार बोस की याद आ गयी।

मैं बोला, 'रूपरतन बोस ने क्या कहा? नौकरी दी आपके लड़के को?'

शशी बाबू ने कहा, 'भई, एक बड़ा मजेदार वाकिआ हुआ।'

'क्या हुआ?' थोड़ा अचम्भा हुआ मुझे।

शशीपद बाबू बोले, 'मेरा लड़का पढ़ाई-लिखाई में बुरा नहीं है, उसका स्वास्थ्य भी अच्छा है। उसका जो इम्तहान होने वाला था, उसके पहले नाम मात्र का एक इन्टरव्यू होने का नियम है। इसी सिलसिले में मैं गया था, जाकर मैंने केदार बोस का नाम बताया।'

'बताया आपने?'

'हां, मैंने कहा कि आपके पिता केदार बोस महाशय और मैं एक ही दफ्तर में नौकरी करते थे।'

मैंने कहा, 'तो आप केदार बोस का नाम क्यों लेने गए?'

शशी बाबू ने कहा, 'मैंने सोचा कि उसके पिता का नाम लेने पर शायद मेरे लड़के को नौकरी मिल जाए। पर भाई, फल उलटा हुआ।...यही बात कहने तो आया हूं।'

'क्या हुआ फिर?'

'एकाएक रूपरतन बोस चीख उठा: 'निकल जाइए यहां से, अभी निक
जाइए।' चीख सुनकर दफ्तर के तमाम लोग दौड़े चले आए। कहां मैं अच
करने गया था कि खराब हो गया सब। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आय
मैं क्या करूं, यह भी नहीं निश्चय कर पाया। चपरासी ने फौरन मेरे
आकर कहा: 'निकल जाइए।' इस तरह ज़िन्दगी में कभी बेइज़्ज़त नहीं
हुआ था, भाई।'

'फिर?'

'फिर बाहर आते ही सब मुझे समझाने लगे। वे बोले—आप
साहब के पिता का नाम क्यों लिया? जानते हैं उनकी माता की मृत्यु
यह बोस साहब ही उत्तरदायी हैं।' मैं तो यह सुनकर चौंक-सा पड़ा

कुछ जानते हो क्या इस विषय में ?'

मैं बिल्कुल अभी कोई जवाब नहीं दे पाया। सोचने लगा मन में। दफ्तर के लोगों को इस बात का पता कैसे लग गया ? और किसीके जानने की बात तो यह है नहीं। अकेले मेरे और केदार बोस के अलावा और तो कोई नहीं जानता था यह सब बात।

फिर मुझे सब याद आने लगा। उस दिन गाड़ी में क्षण-भर के लिए दिखलाई पड़ने के बाद एकाएक एक दिन केदार बोस मेरे यहां आ धमका। तब रात बहुत हो चुकी थी। केदार बोस का चेहरा देखकर मैं हैरत में आ गया।

मैंने पूछा, 'क्या हो गया है तुम्हें ?'

उतनी रात को मेरे घर आकर केदार बोस बुरी तरह रोने लगा। फिर बोला, 'मेरे लड़के को सब पता चल गया है भाई। मुझे इस बात का क़तई गुमान भी नहीं था कि इतने दिन बाद उसे सारी बातों का पता लग जाएगा।'

मैंने पूछा, 'किस लड़के की बात कह रहे हो ? रूपरतन की ?'

केदार बोस ने कहा, 'हां तुमने जिस लड़के का नाम रक्खा था। वह अब इण्डिया गवर्नमेंट का एक बहुत ऊंचा अफसर है। सोचा था, लड़का अच्छी नौकरी कर रहा है, जीवन के अन्तिम दिन सुख से बीतेंगे। और कोई लड़का तो कुछ नहीं कर पाया। न जाने, भाई, कैसे एकाएक लड़के को सब पता चल गया है। वह जान गया है कि मेरी ही वजह से उसकी मां को कैन्सर हुआ था। उस दिन मुझे एक-ब-एक उसने कहा, 'आप तो मेरा जन्म नहीं चाहते थे, तब मेरे पैसे से क्यों खा रहे हैं ? मेरे पैसे से खाने में आपको शर्म नहीं आती ?''

शशी बाबू ने कहा, 'इसके बाद ?'

मैंने कहा, 'इसके बाद काफी देर तक था केदार बोस मेरे यहां। रात बढ़ रही है देखकर मैंने उसे समझा-बुझाकर घर भेज दिया। मैंने कहा कि अगले दिन उसके घर जाकर लड़के को समझाकर कह दूंगा सब। लड़के के जन्म से सम्बन्धित सारी बातें तो मैं जानता ही था। उसका नाम भी मैंने ही रक्खा था। लिहाजा मैंने सोचा कि मेरे कहने पर वह सारी बातें समझ जाएगा।'

शशी बाबू उत्कंठित होकर सुन रहे थे सब। बोले, 'इसके बाद ? आप गए ?'

मैं बोला, 'हां, गया। लेकिन नतीजा कुछ भी नहीं निकला। मेरे पहुंचने के पेश्तर ही सब खतम हो गया था। मैं सुबह के नौ बजे उसके घर ग...

जाकर देखा कि वहां चारों ओर पुलिस छाई हुई है। सुना कि केदार बोस ने पिछली रात को ही आत्महत्या कर ली है।'

•

सम्भवतः जनसंख्या बढ़ी है, हो सकता है जनसंख्या और बढ़ जाए, मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध और जटिल और कुटिल हो जाए। पहले कृषि-निर्भर था मनुष्य, अब यन्त्र-निर्भर हो गया है। यन्त्र की तरह जीवन भी यन्त्रणा-मुखर हो उठा है। शायद अब यन्त्र से उसे और मुक्ति नहीं मिलेगी। मनुष्य ने यन्त्र-सभ्यता को स्वीकार कर लिया है, पर उसकी नेमत जितनी मिली है सम्भवतः उससे अधिक यन्त्रणा ही मिली है उसे, यद्यपि मनुष्य ही उस यन्त्र का स्रष्टा है। मनुष्य जो कुछ सृष्टि करता है, प्रयोजन होने पर एक दिन फिर उसका विध्वंस भी कर सकता है। जो मनुष्य नगर गढ़ता है, एक दिन वही उसे नष्ट भी करना चाहता है।

इसीमें है मनुष्य का कृतित्व।

मनुष्य मनुष्य है तभी उसके अपने हाथ में है उसकी मुक्ति। जिस तरह मनुष्य मनुष्य का शत्रु है, उसी तरह मनुष्य ही फिर मनुष्य का मित्र भी है। जो मनुष्य दुर्मति से अपनी हत्या करता है, वही मनुष्य फिर मृत-संजीवनी का आविष्कार करके मानव के आरोग्य का पथ प्रशस्त कर देता है।

एक ऐसे ही आदमी को देखा था मैंने एक दिन। चारों ओर से साज़िश से घिरे रहकर भी उस शख्स ने न जाने कैसे अपने बचाव का रास्ता खुद ही निकाल लिया था।

पहली मुलाकात हुई थी ट्रेन के कम्पार्टमेंट में।

अब उसी शख्स का हाल सुनाता हूं :

चतुर्थ

ट्रेन जब दिल्ली से चल दी तभी देखा था, लेकिन उतना खयाल नहीं किया था। काफी भद्र चेहरे के एक भले आदमी ट्रेन पर चढ़े। मेरे कम्पार्ट-मेंट में दो बर्थ थे। खाली बर्थ पर वे बैठ गए।

अनूमन ऐसी हालत में अपनी तरफ से मैं किसीसे परिचय नहीं करता। इसलिए बावजूद उनकी मौजूदगी के जैसे मैं बाहर की ओर देख रहा था, वैसे ही देखता रहा।

किन्तु कुतूहल एक साघातिक विष है। यह किसी तरह अगर एक बार अन्दर चला जाता है तो फिर खैर नहीं। वह फूटकर निकलेगा ही। थोड़ी ही देर बाद भले आदमी काफी घनिष्ठ हो उठे। बोले, 'कहा तक जाएंगे आप ?'

साधारणतया यह प्रश्न भद्रता-विरुद्ध है। तभी थोड़ा रुखाई से ही जवाब दिया, 'कलकत्ता ?'

पर उत्तर सुनकर भले आदमी ने और भी घनिष्ठ होना चाहा, 'अच्छा हुआ साहब, तमाम रास्ता एकसाथ जाएंगे, मुह बन्द करके तो नहीं रहा जा सकता।'

कहकर अपनी पोशाक खोलकर रख दी। लुंगी पहनकर सहज होकर बैठे। फिर जूते खोलकर चट्टिया पहनी। इसके बाद निकला टिफिन-कैरियर। कटोरिया करीने से सजाकर बोले, 'अगर कुछ खयाल न करें, आपने भोजन कर लिया क्या ?'

बोला, 'जी हा, भोजन कर चुका हूं ...' कहकर प्रसंग को समाप्त कर देने की गरज से दूसरी ओर देखने लगा।

वह भले आदमी बोले, 'देखते हैं लड़के की करामात, कितना खाना दे दिया है बूढ़े बाप के साथ। एक आदमी क्या खा सकता है इतना ? मुझे राक्षस समझ लिया है क्या ? देखिए, देखिए न थोड़ा इधर...'

देखना ही पड़ा मुझे उधर। देखा कि ढेर सारी पूड़िया हैं, आलू दम है, मुर्गी करी है, मटन कटलेट है, चॉप है, रसगुल्ला-पेड़ा-जलेबी वगैरह हैं।

भले आदमी बोले, 'आज सब नहीं खा पाऊंगा, कुछ कल के

दूंगा।' फिर थोड़ा रुककर बोले, 'लड़के ने सोचा है कि बाप को भरपेट ...कर खुश कर देगा। पर लड़कों को यह नहीं पता कि उनकी भलाई देख- ही पिता खुश हो जाते हैं। आपका क्या खयाल है?'

मैं बोला, 'यह तो है ही ...'

'हालांकि साहब, यही लड़का पहले बिलकुल दूसरी तरह का था। एकदम ...री बात नहीं मानता था—वाह! आलू दम तो बड़ा बढ़िया बनाया है, ...कई ऐसी सब्ज़ी मैंने बहुत दिन से नहीं खाई।'

बड़े अजीब लगे भले आदमी। पहले से वैसी जान-पहचान न होने पर भी थोड़ी ही देर में उन्होंने मेरे साथ बड़े अंतरंग भाव से बातचीत का सिल-सिला जमा लिया। साधारणतया आदमी जब खुद बाप बनता है तभी औलाद की कीमत समझता है। मैंने सोचा, शायद इकलौता लड़का है, नई नौकरी मिली है उसे दिल्ली में, तभी इतनी खुशी है बाप के मन में। या हो सकता है कि लड़का भी बाप को बहुत चाहता है। शायद सभी बाप अपने बेटों को चाहते हैं, लेकिन सभी बेटे तो अपने पिताओं को नहीं चाहते। यहां हो सकता है कि बाप के प्यार के साथ बेटे के प्यार का सामंजस्य स्थापित हो गया है। यही तो आनन्द की बात है। इसी सामंजस्य के होने पर ही संसार में जीने का आनन्द मिलता है।

इसके बाद भले आदमी ने सूटकेस से एक एलबम निकाला। एलबम में लड़के की विभिन्न अवस्थाओं के चित्र थे—एकदम एक दिन—एक महीने की उमर शुरू करके इस समय की उमर तक के।

भले आदमी बोले 'यह देखिए, बचपन में कितना सुन्दर था मेरा लड़का।'

मैं चित्र को देखूं, या पिता के चेहरे पर खेलती आनन्द की छटा को देखूं, तय नहीं कर पाया। पर मुझे बड़ा आनन्द मिला देखकर। इस युग में जब पिता-माता और सन्तान के सम्बन्धों में दरार पड़ गई है, तब ऐसा अनाविल आकर्षण देखकर आनन्द तो होगा ही।

काफी देर तक देखने के बाद मैंने सिर्फ एक बात कही। क्योंकि कुछ कहना अशोभनीय होता, इसीलिए कहना पड़ा। मैंने कहा, 'आप सचमु... बड़े भाग्यवान हैं साहब।'

मेरी बात सुनकर आनन्द से एकदम विगलित हो गए भले आदमी... बोले, 'ठीक कहा आपने। मैं भी बीच-बीच में यही सोचता हूं और ... सौभाग्य के लिए भगवान को धन्यवाद देता हूं। अभी उस दिन अखबा...

देखा कि एक लड़के ने बाप पर मुकदमा चलाया है।'

मैंने पूछा, 'क्यों ?'

'क्यों ? जायदाद के लिए।'

मैं बोला, 'आजकल हमारा समाज ही ऐसा बन गया है। एक-दूसरे को श्रद्धा नहीं करते हम। कोई अगर हममें से ऊंचा उठ जाता है, उसे येन केन प्रकारेण नीचे उतारने की ही चेष्टा करते हैं हम।'

भले आदमी मेरी बात में एकाएक अपने मत का समर्थन पाकर उछल पड़े। बोले, 'ठीक कहा है साहब आपने, बिलकुल ठीक कहा। मैं तो अपने लड़के को यही सीख देने आया हूं। मैंने उससे कहा कि तुम्हें तो भोगने ही, लेकिन इसलिए क्या कायदा रुका रहेगा ? कबीर का यह दोहा तो जानते हैं न...'

रात हो चली थी। खाने का वक्त होते ही फिर उन्होंने अपना टिफिन-कैरियर निकाला। मैं डाइनिंग-कार में चला गया।

इसके बाद खाकर लौट जाने के बाद भी मुझे छुट्टी नहीं मिली। सिर्फ दो ही बर्थ हैं कम्पार्टमेंट में। लेटे-लेटे भी उनके लड़के की कहानी सुननी पड़ी। और इसी दरमियान न जाने कब मुझे नींद आ गई। तब उनके पुकारने पर भी मुझे कुछ नहीं सुनाई पड़ा।

इस तरह बस में, ट्रेन में, प्लेन में न जाने कितने अजीब लोगों से जान-पहचान होती है। लेकिन कौन याद रखता है कितने लोगों को ? पुनः अपने अभ्यस्त जगत् में लौट आने के बाद सब कुछ भूल जाना ही सनातन नियम है। तभी मैं भूल ही गया था इस मुलाकात की बात को।

लेकिन फिर याद दिला दी सुकान्त ने।

सुकान्त मेरा बहुत पुराना दोस्त है। एक-ब-एक सुकान्त का लड़का कहीं से एक शरणार्थी लड़की को शादी करके घर ले आया। सुकान्त ने उन्हें घर से निकाल दिया था।

सान्त्वना दे रहा था मैं उसे। यथासम्भव मैं उसे समझा रहा था कि जीवन में क्या सभी सुखी होते हैं ? कितने ही आदमी हैं जिनके पास बेहद दौलत है, लेकिन हो सकता है कोई औलाद न हो उनके। इन बातों से मन को दुखी नहीं करना चाहिए। सब प्रकार की परिस्थितियों को हंसते हुए सहना ही बुद्धिमानी है। मैंने उसे ट्रेन में मिले उस भले आदमी का मिसाल देते हुए कहा कि उनके जीवन की कोई साध पूरी नहीं हुई है। रुपया-पैसा, घर,

वगैरह कुछ भी नहीं जुटा पाए। पर उनके लड़के को दिल्ली में एक तनख्वाह की नौकरी मिल गई है। और वह लड़का बाप पर जान देता

इस बात को सुनकर एकाएक सुकान्त सांप की तरह फुफकार उठा। ला, 'कौन ? किसकी बात कह रहे हो ? हमारे दीनू दा की ?'

याद है, स्टेशन पर उतरते वक्त कोई एक नाम बताया था उन्होंने। लेकिन याद नहीं था स्पष्ट रूप से।

सुकान्त बोला, 'हां, हां, उनका पूरा नाम है दीनानाथ भट्टाचार्य। गन एण्ड शेल फैक्टरी के सब-हेड हैं। पाइकपाड़ा में रहते हैं न ?'

मैं बोला, 'हो सकता है। पता मुझे यही दिया था, कहा था उधर जाएं पर मुलाकात करने के लिए।'

'हां, बिलकुल दीनू दा ही हैं। मैं जब पाइकपाड़ा में रहता था, तब मेरे पास वाले मकान में ही तो रहते थे। बड़े 'डियर' आदमी हैं, लेकिन किस्मत के खोटे हैं भले आदमी।'

'किस्मत के खोटे हैं ? क्यों ?'

मैं सुकान्त की बात सुनकर हैरत में आ गया। सुकान्त उन्हीं भले आदमी की बात ही तो कर रहा है ?

सुकान्त बोला, 'उनका हुलिया कैसा है बताता हूं : सिर पर खिचड़ी बाल, सांवले रंग बदन का, मुंह में सामने का एक दांत नहीं है। क्यों ठीक मिल रहा है न हुलिया ?'

मैं बोला, 'हां, ठीक।'

'तब वे हमारे दीनू दा के अलावा और कोई नहीं हो सकते। एकदम ट्रे मार्क वाला चेहरा है उनका। सचमुच बड़े मज़ेदार आदमी हैं, बड़े भोज विलासी। एक-एक दिन चार-पांच मुर्गियां खरीद डालते थे, और हम स बुला-बुलाकर खिलाया करते थे। बड़े हरदिलअजीज़ शख्स थे भाई दीन तब। इसपर उस शख्स की छाती के भीतर एक आग हमेशा जलती थी...'

बड़ा आश्चर्य हुआ मुझे सुकान्त की बात सुनकर। बोला, 'क्यों ?'

सुकान्त बोला, 'बड़ा लम्बा किस्सा है यह।'

मैं बोला, 'होने दो लम्बा किस्सा, सुनाओ तुम, मैं सुनूंगा।'

... ने कहा, 'लेकिन वक्त लगेगा सुनाने में। कोई काम

तुम्हें ?'

मैंने कहा, 'सुनाओ न तुम, मैं सुनूंगा ।'

बहुत रात हो गई थी तब। यही तो होगा कि और अधिक हो जाएगी रात। घर लौटने के लिए रास्ते में बहुत रात होने पर भी टैक्सी मिल ही जाएगी। मेरा खाना तैयार करने के लिए घर में कहलवा दिया सुकान्त ने। फिर बोला, 'तुम आराम से बैठ जाओ, तब तक चाय मंगवाता हूं।'

शनिवार की रात थी। अगले दिन किसी काम की जल्दी नहीं थी। पर चर्चा इतनी रसीली चीज होती है कि सुकान्त का किस्सा सुनते-सुनते कब खाया, क्या खाया, और कब खाना खतम हुआ, यह याद नहीं। दत्तचित्त होकर सुन रहा था किस्सा। कहा से, कैसे, किस सिलसिले में बात करते-करते कैसा एक ऐसा प्रसंग आ गया कि एकदम और ही एक जगत् में चला गया। कहानी जब खतम हुई तब करीब आधी रात का वक्त हो गया था। एक टैक्सी लेकर घर चला आया।

•

लेकिन इतनी रात को घर लौटकर भी नींद बिलकुल नहीं आयी। करवटें बदलता रहा बहुत देर तक। एक बार उठकर खिड़की खोल दी, फिर थोड़ी देर बाद बन्द भी कर दी। लगा कि उन्हीं दीनानाथ भट्टाचार्य की वह हाहाकार-मिश्रित हंसी सुनाई पड़ रही है। जैसे भोर के समय नींद से उठकर ही घर के सामने खड़े पुकार रहे हैं, 'क्यों जी सुकान्त, अभी तक सो रहे हो क्या ? उठो उठो...'

सुकान्त की हमेशा की आदत है देर तक सोने की। इच्छा न रहने पर भी उठ पड़ता था। फिर आंखें रगड़ते हुए बाहर आता। दीनू दा तब सारे दिन के लिए तैयार मिलते।

दीनू दा कहते, 'इतनी देर तक क्यों सोते हो जी ?'

पर सुकान्त कुछ नहीं कहता था। सुकान्त जानता था कि सारी रात नहीं सोये है दीनू दा, तभी इतने सवेरे उठ पड़े हैं।। हो सकता है, तमाम रात झगड़ा किया है दोनों ने। दोनों ने यानी दीनू दा और उनकी स्त्री ने। एक विचित्र ढंग का झगड़ा चलता था दोनों में। लेकिन किस बात के लिए झगड़ा होता, इसे बाहर से नहीं समझा जा सकता था। बाहर के लोग घर में आने पर एकदम स्वस्थ स्वाभाविक परिवेश पाते थे।

सुकान्त अपनी स्त्री से कभी-कभी पूछता, 'अच्छा बताओ तो, ये आपस

किस बात के लिए करते हैं ?'

कान्त की स्त्री बड़ी सीधी-सादी थी। रसोई करती तो रसोई ही करती बुरा नहीं मानती थी तनिक भी। और जब बातचीत करती तब बात-ही में लगी रहती, और किसी ओर उसका ध्यान नहीं रहता। इतनी ल हो जाती बातचीत में कि चूल्हे पर रक्खी दाल-भात-सब्ज़ी जल जाती। उस जून भोजन नहीं होता।

हंसते-हंसते सुकान्त कहता, 'नाः, देख रहा हूं कि तुमसे शादी करके मुझे ई फायदा नहीं हुआ।'

सुरभि कहती, 'तब तो तुम्हारी स्त्री दीनू दा की स्त्री की तरह होनी ाहिए थी, आटे-दाल का सारा भाव मालूम हो जाता।'

मध्यवित्त वर्गीय समाज के दैनन्दिन घात-प्रतिघात की कहानी है यह। जैसे सुकान्त कभी गौर नहीं करता था इसपर, वैसे ही सुरभि भी नहीं करती थी।

लेकिन एक दिन शायद मामला तूल पकड़ गया। दीनू दा अकस्मात् सुकान्त के मकान की ड्योढ़ी पर आकर धीरे-धीरे खटखटाने लगे, 'ओ सुकान्त, सुकान्त...'

सुकान्त और सुरभि गहरी नींद में बेखबर सोए हुए थे। एक-ब-एक पुकारे जाने पर अकबकाकर उठे और दरवाज़ा खोल दिया।

लेकिन उस वक्त भी दीनू दा के चेहरे पर मीठी हंसी झलक रही थी। बोले, 'बड़ी मुसीबत में फंस गया हूं, भाई।'

'इतनी रात को क्या मुसीबत आ गयी दादा ? भाभी की तबियत खराब हो गयी है क्या ?'

दी दानू बोले, 'अरे धत्, तबियत खराब हो गयी होती तब तो मेरी जान बच गयी होती। बहुत ज़्यादा ठीक है उनकी तबियत, यही तो मुसीबत बन गयी है मेरे लिए। घर से बाहर निकाल दिया है तुम्हारी भाभी ने मुझे।'

'क्यों ? क्या किया था आपने ?'

दीनू दा गंभीर बनना तो जैसे जानते ही नहीं। हंसते-हंसते बोले, 'कुछ कुछ किया तो ज़रूर ही होगा, नहीं तो झूठ-मूठ थोड़े ही निकाल दिया जाने दो इन बातों को, अब तुम्हारे घर रात-भर सोने की जगह तो मिल जा न ? जगह हो या न हो, इस वक्त मुझे सोने तो देना ही पड़ेगा भाई। सर्दी है बाहर—हाथ-पैर जमे जा रहे हैं ठंड से।'

उसी वक्त रात को दीनू दा के लिए बिस्तर बिछा देना पड़ा।

सुकान्त ने कहा, 'शायद यहां तकलीफ हो आपको।'

दीनू दा बोले, 'क्या कह रहे हो जी तुम, यह राजशय्या है मेरे लिए।'

'लेकिन आप मकान से क्यों चले आये, यह नहीं बताया आपने ?'

दीनू दा ने तब कम्बल मे मुह छिपा लिया था। उसी हालत मे बोले, 'बताया तो कि तुम्हारी भाभी ने मुझे घर से निकाल दिया है।'

'आखिर क्यों निकाल दिया है, उसकी भी तो कोई वजह होगी ?'

'वजह क्या होगी जी ? योंही ! क्या योंही आदमी आदमी को घर से नहीं निकाल दे सकता ?'

'बिला वजह निकाल देंगी क्या ?'

दीनू दा बोले, 'अब फौरन तुम यहा से अपने कमरे में चले जाओ। बहूरानी न जाने क्या सोच रही है अपने मन में।'

कहकर चुप हो गये। उस दिन और कोई बात नही हुई। बहुत रात हो गयी थी। लेकिन अगले दिन उनका एक दूसरा ही रूप नजर आया। जैसे पिछली रात को कोई अनहोनी बात हुई ही नहीं थी, कही कुछ भी व्यतिक्रम नही हुआ था। फिर रोज की तरह थैला-भर के शाक-सब्जी लेकर बाजार से लौटे हैं।

सुकान्त को देखकर बोले, 'चार मुर्गियां ले आया हू, जानते हो। आज रोस्ट बनाऊंगा मुर्गियों का—खाओगे न ?'

यह शख्स हमेशा न जाने क्यों बड़ा अजीब लगता था सुकान्त को। और अशोका भाभी भी न जाने कैसी हैं ! क्यों झगड़ा करती है, यह अकेले में पूछने पर भी कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता था। जब कि उनका बाहरी व्यवहार बहुत भद्र होता था, आचरण स्वाभाविक। सुकान्त के दीनू दा के घर जाते ही भाभी सामने आकर पूछती, 'आओ देवर जी, क्या खाओगे ? फाउलकरी, या मीट चॉप ?'

सुकान्त को अचरज होता। वह कहता, 'क्यों भाभी, आपने होटल खोला है क्या ?'

अशोका भाभी मुसकराती थी। कहती, 'वह है, उन्हींसे पूछो न, वे ही जानते हैं।'

मंद मुसकान खेलती रहती दीनू दा के चेहरे पर।

सुकान्त कहता, 'बहुत रिश्वत मिलती है शायद दीनू दा आपको ?'

दीनू दा कहते, 'अरे नहीं भाई, बज़ार जाते ही नालायक सब इस तरह पकड़ लेते हैं कि बिना खरीदे उनसे छुटकारा नहीं मिलता।'

अशोका भाभी कहतीं, 'लेकिन दाम तो तुम्हींको देना पड़ता है, फोकट में तो दे नहीं देते वे तुम्हें। कीमत लेते वक्त एक नये पैसे तक की रियायत नहीं करते।'

दीनू दा मुसकराते हुए कहते, 'अरे यह बात नहीं, गरीब आदमी हैं सब। हम लोग अगर उनसे न खरीदें तो वे खायेंगे क्या?'

अशोका भाभी ताना मारकर कहतीं, 'सच्ची बात क्यों नहीं कहते कि तुम्हें ही अच्छा लगता है यह सब खाना। तुम्हीं भोजन-भट्ट हो।'

सुकान्त कहता, 'सचमुच दीनू दा, अशोका भाभी ठीक कहती हैं। आप भोजन-भट्ट हैं, ज़रूर कुछ हद तक।'

अशोका भाभी अपनी बात का समर्थन पाकर कहतीं, 'तुम्हीं बताओ भाई देवर जी, ऐसे पेटू आदमी के साथ गिरस्ती कैसे निबाही जा सकती है? ज़िन्दगी में और कोई काम नहीं है, और कोई ख्वाहिश-खुशी नहीं है, सिर्फ पकाओ और पकाओ। दिन-रात फकत खाना पकाते-पकाते ही मेरी यह उम्र तमाम हो गयी।'

अशोका भाभी की इस बात में शायद उनके दुःख के मूल कारण का एक आभास था। पर इस प्रसंग को सुकांत उनके सामने नहीं उपस्थित करता था, इसकी चर्चा करता घर आकर।

सुकान्त कहता, 'असल बात क्या है जानती हो बाल-बच्चे नहीं हुए हैं न, तभी शायद इतनी अशान्ति है उनकी गिरस्ती में।'

सुरभि कहती, 'लेकिन बाल-बच्चे होते क्यों नहीं हैं?'

इसके बाद बात आगे नहीं बढ़ती थी। दुनिया में न जाने कितने आदमियों की कितनी तरह की समस्याएं हैं जिनकी कोई इन्तिहा है?

तो भी जिस दिन सुरभि उस मकान में जाती, देखती कि अशोका भाभी दत्तचित्त होकर रसोई में लगी हैं। एक चूल्हे पर गोश्त पक रहा है, एक पर चावल और एक हीटर पर कड़ाही में पूरियां तली जा रही हैं।

अशोका भाभी कहतीं, 'यह देखो भाई, भूत की गिरस्ती में जुती हूं।'

सुरभि पूछती, 'क्या यह सब दादा के खाने के लिए बन रहा है। या और किसीके आने की बात है?'

'अरे, आयेगा कौन? वे खायेंगे और मुहल्ले के किसीसे अगर मुलाकात

हो जायगी तो उसे भी साथ लाकर खिलायेंगे।'

'लेकिन क्या इस खाने के मामले पर ही आप लोगों में झगड़ा होता है भाभी?'

अशोका भाभी कहती, 'तो झगड़ा क्यों न करूं? शादी होने के बाद से ही सिर्फ खाना पकाकर जिन्दगी गुजारना किसे अच्छा लगता है? न एक सिनेमा देखना, न थियेटर देखना। अपना कोई सगा-सम्बन्धी भी तो नहीं है कि कहीं जाकर कुछ दिन आराम से रह आ सकूं। अभी दफ्तर से आयेंगे, आकर हाथ-मुंह धोकर नाश्ता करेंगे, फिर खाट पर चित्त लेट जायेंगे। इसके बाद जो कुछ पकाया है उसे चखेंगे, फिर रसोई की अच्छाई-बुराई पर विचार करेंगे।'

'इसके बाद?'

'इसके बाद और क्या होगा? तमाम दिन खटने के बाद बिस्तर पर पड़के खर्राटे भरेंगे। सारे दिन सिर्फ बाजार जाने, खाने और खर्राटे भरने के अलावा और कोई काम है तुम्हारे दादा का?'

सुरभि कहती, 'तो उस दिन सोते हुए आदमी को जगाकर आपने आधी रात के वक्त घर से बाहर क्यों निकाल दिया था?'

अशोका भाभी जवाब देती, 'निकाल क्यों न देता? बिलकुल पास ही इस तरह खर्राटे की आवाज होने पर किसीको नींद आ सकती है कभी? मेरे पास भी तो शरीर नाम की एक चीज है। या कि मैं आदमी नहीं हूं? यह जो पूरे दिन बेगार में जुटी रहती हूं, मछली-गोश्त और रोस्ट, चॉप-कटलेट बनाती हूं, इसमें भी तो मेहनत होती है। सारे दिन खटने के बाद मुझे भी तो नींद आ सकती है, इसे तो तुम्हारे दादा देखेंगे नहीं। उनके खर्राटे के शब्द से श्मशान का मुर्दा भी डरकर जग उठ सकता है, जानती हो?

सुरभि अशोका भाभी से जो कुछ सुनती थी, आकर फिर सुकान्त को बता देती थी।

सुकान्त कहता था, 'तो तुमने पूछा क्यों नहीं कि आप लोगों ने डाक्टर को दिखलाया है बाल-बच्चे न होने के लिए?'

'छी:, कैसी बातें करते हो! कहीं यह बात भी पूछी जा सकती है किसीसे?'

इसके बाद और कोई बात नहीं होती थी। इसी तरह सुकान्त ने एक विचित्र परिवार के पड़ोस में कई साल पाइकपाड़ा में गुजारे थे। और इसके बाद वे लोग चले आए थे भवानीपुर में।

इसके कुछ दिन बाद ही सहसा सुकान्त ने एक खबर सुनी। शायद सुकान्त के दफ्तर के किसी आदमी ने ही आकर खबर दी उसे।

वह बोला, 'अपने दीनू दा की खबर सुनी है सुकान्त बाबू ?'

'कौन दीनू दा ?'

'अरे, पाइकपाड़ा के आपके पुराने पड़ोसी, दीनानाथ भट्टाचार्य। उनकी स्त्री ने दीनू बाबू को घर से बाहर निकाल दिया है।'

यह कोई नई खबर नहीं है सुकान्त के लिए। यह घटना तो पहले भी देख चुका है सुकान्त बहुत बार। आधी रात को घर से बाहर निकालकर फिर भोर के वक्त अंदर आने दिया है।

उस शख्स ने कहा, 'नहीं, इस बार घर में नहीं घुसने दिया है आपके दीनू दा को।'

'तब कहां गये दीनू दा ?'

उसने कहा, 'यह तो मैं नहीं जानता।'

उस शख्स ने और किसीसे यह बात सुनकर सुकान्त को बतलायी थी। लेकिन सुकान्त के मन में गड़ गयी थी बात। घर आकर उसने सुरभि को बतायी यह बात। अगर अशोका भाभी ने दीनू दा को घर से निकाल ही दिया है तब दीनू दा गये कहां ? दीनू दा के चले जाने के बाद अशोका भाभी अकेले अपना खर्च कैसे चला रही हैं ? किराये का वह मकान अशोका भाभी के ही नाम पर लिया हुआ था। लिहाजा उस मकान में अशोका भाभी को रहने का हक तो है। लेकिन किराया कहां से देगी अशोका भाभी ? अशोका भाभी का नैहर भी तो नहीं है।

एक छुट्टी के दिन मौका ढूंढ़कर सुकान्त पाइकपाड़ा जा पहुंचा। सुकान्त खुद जिस मकान में रहता था उसमें एक नया किरायेदार आ गया है। अगला मकान ही था दीनू दा का, लेकिन उस मकान का चेहरा एकदम बदल गया है। सामने की ओर एक नया कमरा बन गया है। उसपर एक झूलता बरामदा है। एक लता अपनी डालियों और पत्तियों को फैलाती हुई दीवार के सहारे दूसरी मंजिल तक पहुंच गयी है। मकान-मालिक दूसरी मंजिल पर रहता था। नीचे की मंजिल किराये पर उठा दी थी अशोका भाभी और दीनू दा को। सुकांत ने दूर से देखा कि मकान-मालिक का लड़का सामने घूम-फिर रहा है। शायद बाग की देखभाल कर रहा है। लेकिन भीतर जाकर पूछने में संकोच हुआ।

'इसके बाद ?'

सुकान्त बोला—

इसके बाद जब मैं समझ गया कि दीनू दा उस मकान में नहीं हैं तब वहां और नहीं ठहरा। अच्छा भी नहीं लगा मुझे वहां ठहरना। एक जमाना था जब मैं उस मकान में कितना जाया करता था, कितना गप लड़ाया करता था, न जाने रात-दिन का कितना वक्त गुजारा है उसमें, यह सारी बातें याद आने लगीं। लेकिन तो भी ख्याल आया कि आखिर अशोका भाभी कहां चली गयीं ? उनका तो मायका भी नहीं है। गयीं कहां ?

उसी मनोदशा को लिये घर लौट आया भाई। घर लौटते ही सुरभि ने पूछा, *'क्या हुआ ? कोई खबर मिली ? अशोका भाभी से मुलाकात हुई ?'*

मुझे कोई जवाब देते न देखकर सुरभि का अचरज जैसे और बढ़ गया। मुझसे पूछा, 'बोलते क्यों नहीं ? क्या हो गया तुम्हें ?'

[illegible] भी नहीं

[illegible] है भाई ?

[illegible]

'मुलाकात नहीं हुई का क्या मतलब ? मकान में क्या कोई और किरायेदार आ गया है ?'

मैं बोला, 'नहीं।'

'तब ?'

मैंने कहा, 'पुराना मकान-मालिक मर गया है, उसका लड़का ही बन गया है अब मकान-मालिक। वही अब ऊपर-नीचे, पूरे मकान को इस्तेमाल कर रहा है।

'तब अशोका भाभी कहां गयीं ? उन्हें भी निकाल दिया है क्या मकान-मालिक ने ?'

मैं बोला, 'पता नहीं।'

असल बात यह है कि इसके अलावा मैं जवाब भी क्या देता। वही दीनू दा, वही अशोका भाभी। वही रोज-रोज का प्रचुर भोजन, वही आधी रात को दीनू दा को घर से निकाल देना—यह सब तब भी मेरी नजरों के सामने घूम रहा था। जो मर्मान्तिक खबर मुझे मुहल्ले *के लोगों से मिली है उसे कैसे* बताऊं सुरभि को।

मैंने पूछा, 'मुहल्ले के लोगों से क्या सुना था तुमने ?'

सुकान्त बोला, 'बड़ी दर्दनाक बात है वह भाई।'

मैं बोला, 'क्या है ?'

सुकान्त ने कहा, 'सुनो तब…'

अपने अंधेरे कमरे में आंख मूंदे लेटे-लेटे जैसे उसी घटना को देखने लगा मैं साफ-साफ। उस दिन भी आधी रात का वक्त था। तब सुकान्त वहां से मकान छोड़कर चला गया था। एकाएक धड़ाम से दीनू दा के मकान का सदर दरवाज़ा खुल गया। और इसके बाद एक तेज आवाज सुनाई दी :

'निकल जाओ, निकल जाओ घर से, अभी निकल जाओ…'

असहाय भाव से दीनू दा ने कहा, 'बताओ, कहां जाऊं मैं इतनी रात को…'

अशोका भाभी ने चिल्लाकर कहा, 'मैं क्या जानूं तुम कहां जाओगे ?'

दीनू दा ने कहा, 'बड़ी सरदी है बाहर, ठंड लग रही है…'

'तुम्हें ठंड लग रही है, तो मुझे क्या ! तुम निकल जाओ !…'

पाइकपाड़ा की घनी बस्ती वाले मुहल्ले के सभी पड़ौसियों ने सुनी थीं यह सब बातें। वाकई बड़ा दर्दअंगेज़ दृश्य था यह। सरदी की उस रात में सिर्फ एक चादर-भर थी भले आदमी के बदन पर। शीत-निवारण का वही एकमात्र सहारा था। थरथरा रहे थे तब सरदी से दीनू दा। अंतिम चेष्टा के रूप में दीनू दा ने करुण भाव से कहा, 'आज रात-भर घर में रहने दो मुझे, कल भोर के वक्त ही मैं चला जाऊंगा—सिर्फ आज रात-भर…'

अशोका भाभी शायद आखिर में दीनू दा को रात-भर रहने दे देतीं। लेकिन तभी मकान-मालिक का लड़का भीतर से निकल आया। बोला, 'खबरदार, अब फिर उसे घर में मत घुसने देना, एक मर्तबा अगर अन्दर घुस जाएगा तो फिर नहीं निकलेगा। फौरन निकाल दो।'

मुहल्ले के लोगों ने भी सुनीं ये बातें। अब उनकी समझ में आ गया कि सारे मामले के पीछे एक और आदमी है।

'आप क्यों एतराज़ कर रहे हैं ? मेरी स्त्री है यह, मेरा घर है यह, मैं घर का किराया देता हूं।'

'आप किराया देते हैं ? कभी नहीं, किराया तो अशोका भाभी देती हैं ? अशोका भाभी के नाम पर मकान किराये पर लिया गया है।'

'लेकिन चूंकि मैं नौकरी करके कमाता हूं तभी तो मेरी स्त्री किराया दे पाती है। मेरी स्त्री का क्या कोई निजी रोजगार है ?'

'चुप रहिए ! ज़्यादा बोलिए मत, नहीं तो अभी पुलिस को खबर कर दूंगा।

इसके बाद न जाने कैसी अजीब-सी आवाज होने लगी। शायद कुछ मार-पीट या हाथापाई हुई। इसके बाद सब कुछ निस्तब्ध हो गया। उस जाड़े की रात में कोई बाहर नहीं निकला। फिर कब रात बीती और सवेरा हुआ, किसी-को पता नहीं चला। सवेरे गत रात्रि के विपर्यय का कोई चिन्ह नहीं दिखलाई पड़ा। किसीने नहीं देखा फिर दीनू दा को कई दिन तक। सिर्फ कई दिन ही। इसके बाद फिर दिखलाई पड़े दीनू दा। वही पहले की तरह दीनू दा पान चबाते-चबाते हाथ में थैला लिये बाज़ार चले जा रहे हैं। बाज़ार से बिलकुल पहले की ही तरह मुर्गी खरीद रहे हैं, गोश्त खरीद रहे हैं, मछली खरीद रहे हैं। खरीद-कर फिर पहले की तरह ही उसी पुराने मकान में घुस रहे हैं! लेकिन नहीं, उस मकान के सामने वाले सदर दरवाज़े से नहीं, पीछेवाले दरवाज़े से घुस रहे हैं। खड़की से।

धीरे-धीरे आखिरकार सब साफ हो गया। और छिपी नहीं रही बात। अब भी इस मुहल्ले के लोग रोज़ दीनू दा को देखते है। दीनू दा हाथ में थैला लेकर बाज़ार जाते है। मुर्गी खरीदते है, गोश्त खरीदते हैं, मछली खरीदते हैं। इसके बाद पिछवाड़े की खिडकी में होकर अन्दर जाते है। और सुना जाता है कि भीतर जाकर चूल्हा जला के रसोई शुरू कर देते हैं। अपने हाथ में ही अपनी रसोई बनाते है। इसके बाद आराम से बैठकर मज़ा ले-लेकर खाते हैं।

'तब लड़का? भले आदमी लडके की बात कह रहे थे, वह लड़का कहा से आ गया?'

'वह लड़का तो अशोका भाभी का है।'

'इसका मतलब?'

हैरत में आ गया मैं सुकान्त की बात सुनकर। किस्सा सुनते-सुनते बहुत रात हो गई थी तब। अब शायद टैक्सी भी नहीं मिलेगी। बाहर रास्ते की ओर देखा मैंने। सामने की पान-बीड़ी-सिगरेट की दुकान ने भी अपना ढक्कन डाल लिया था। करीब के मकान का रेडियो काफी देर हुए बन्द हो चुका था। सुकात ने कहा, 'अब रहने दो, बाकी किस्सा बाद में किसी दिन सुना दूंगा।'

मैंने कहा, 'नहीं, तुम सुनाओ। चाहे जितनी रात हो जाए, पूरा किस्सा सुनकर ही जाऊंगा। वह लड़का किसका है बताओ?'

सुकान्त बोला, 'बताया तो कि अशोका भाभी का।'

तो भी मैं कुछ नहीं समझ सका। बोला, 'तुम्हारी अशोका भाभी अब रहती कहा हैं? लड़का हो कैसे गया उन्हें?'

सुकान्त ने नीची आवाज़ में कहा, 'भाई सुरभि को भी मैंने यह सब बातें नहीं बताई हैं। सुनने पर तकलीफ होगी उसे। उसी मकान-मालिक के लड़के से ही अशोका भाभी ने शादी कर ली है।'

'एं !'

'हां। दीनू दा को तलाक देकर मकान-मालिक के उसी लड़के से शादी कर ली है अशोका भाभी ने। शादी करके उसी मकान में रहती हैं।'

मैं और स्तम्भित हो गया। बोला, 'उसी मकान में? उसी एक ही मकान में?'

'हां, उसी एक ही मकान में मकान-मालिक के लड़के के साथ रहती हैं। पहले जहां दीनू दा रहे थे, वहीं। जिस बिस्तर पर दीनू दा सोते थे, उसी एक ही बिस्तर पर अब मकान-मालिक का लड़का सोता है। अशोका भाभी अब उसी की बीबी है। अब अशोका भाभी के बहुत-से बाल-बच्चे हुए हैं। बड़े आराम से हैं अब वह, पूरा मकान अपने नाम करवा लिया है। एक कार भी खरीदी है, जिसपर चढ़कर घूमती है, सिनेमा जाती है, न्यू मार्केट जाती है।'

'और दीनू दा कहां हैं?'

सुकान्त ने कहा, 'दीनू दा उसी मकान में हैं, लेकिन पीछे की ओर एक कमरा लेकर। किराया देते हैं कमरे का। चाहे जो हो, अशोका भाभी का हृदय है बड़ा उदार। दीनू दा से ज्यादा किराया नहीं लेतीं। सिर्फ पचास रुपये लेती हैं जो किराया पहले दिया करते थे दीनू दा। हालांकि अगर चाहती तो अशोका भाभी कमरे को सौ रुपये किराये पर किसी और को दे सकती थी।'

मैंने कहा, 'तो तुम्हारी अशोका भाभी का लड़का दीनू दा के पास कैसे चला गया?'

सुकान्त ने कहा, 'यही तो बात है। तभी तो कहा था मैंने कि अशोका भाभी का हृदय है बड़ा उदार। अपने बड़े लड़के को दे दिया है दीनू दा को। दीनू दा ने ही अशोका भाभी के बड़े लड़के को पाला-पोसा है बचपन से। लड़का भी उसी तरह दीनू दा से बेहद हिल-मिल गया है। पढ़ने-लिखने में बहुत तेज रहे हैं दीनू दा। उसे दिल्ली में उन्होंने एक नौकरी भी दिलवा दी है। स्वयं नौकरी से रिटायर होकर दिल्ली में उसी लड़के के पास रहकर ही ज़िन्दगी के आखिरी दिन गुज़ारने का इरादा किया है दीनू दा ने।'

●

तमाम रात जब नींद ही नहीं आई तब भोर होते बिस्तर से उठ पड़ा।

सोचा कि एक बार भले आदमी से मुलाकात ही कर आऊं। हावड़ा स्टेशन पर उतरते समय उन्होंने अपना नाम-पता दे दिया था और कहा था कि उधर जाने पर उनसे मिलना न भूलूं जैसा कि शराफत के नाते कहा जाता है।

पता ढूंढकर सचमुच ही बस पर सवार होकर पहुंच गया मैं पाइकपाड़ा।

मकान के सामने एक सज्जन खड़े थे। बहुत सुन्दर स्वास्थ्य था उनका, बड़ा आकर्षक व्यक्तित्व। मेरी बात सुनकर बोले, 'उस खिड़की के रास्ते सीधे पिछवाड़े चले जाइए, वहीं रहते हैं दीनानाथ भट्टाचार्य।'

सामने बगिया जैसी थोड़ी जगह है, जहां करोटन के पेड़ हैं, फूल के पेड़ हैं। एक तंग रास्ते से मैं पीछे की ओर गया। दूर से ही देखकर मुझे पहचान लिया भले आदमी ने। बोले, 'आइए आइए। ओ., आपने यहां आने की तकलीफ गवारा की है, यह देखकर मुझे बड़ी खुशी हो रही है, आपको क्या खाने को दूं बतलाइए ...'

मैं बोला, 'कुछ नहीं खाऊंगा। इधर आया था, तभी आपकी बात याद आ गयी। आपको शायद ड्यूटी पर भी जाना पड़ेगा।'

दीनानाथ बाबू बोले, 'ड्यूटी पर जाने की बात क्यों कह रहे हैं, आज तो इतवार है।'

मैंने कहा, 'जो भी हो, मैं कुछ नहीं खाऊंगा, अभी चलूंगा।'

दीनानाथ बाबू व्यग्र हो उठे। बोले, 'यह नहीं हो सकता। आप पहली मर्तबा मेरे घर तशरीफ लाए हैं, कुछ खाकर ही आपको जाना पड़ेगा।' कहकर पास की रसोई में जाकर प्लेट में दो चॉप ले आए। बोले, 'मेरे अपने हाथ के बनाए हैं, एतराज न कीजिए।'

'आपने बनाए हैं ? इतने सवेरे बनाया कब आपने ?'

दीनानाथ बाबू ने कहा, 'अरे साहब, मेरा लड़का भी तो यहीं रहता है। मेरा लड़का मेरे हाथ की बनी चीजें बहुत पसन्द करता है न। कल रात को कच्चा ही तैयार करके रख दिया था सब। आज सवेरे चार बजे उठकर चूल्हा जलाया है, फिर इन्हें सेंका है। चार चाय के साथ खा चुका हूं, फिर बाजार गया हूं। शाम की चाय के साथ चार और खाऊंगा।'

'लेकिन मुझे देने से आपको कम पड़ जाएंगे न ?'

'आप भी क्या बात करते हैं, क्या आप समझते हैं कि मैं खाने की चीजें गिनकर बनाता हूं ? अरे, आपको चाय देना तो भूल ही गया...'

यह कैसी मुसीबत में फंस गया मैं ! भले आदमी को उस दिन देर

ते हुए। दिल्ली से ट्रेन में आते वक्त। फिर यह आज। भले आदमी इतना
त्र हो जाने पर भी इसी मकान में रह रहे हैं, खा रहे हैं, इतना हंस-बोल रहे
—यह देखकर चकित हो गया मैं। एक बार इच्छा हुई सुकान्त की उस
अशोका भाभी को देखने की, लेकिन तब मौका नहीं था उसका। बहुत-सी
इधर-उधर की बातें होने लगीं। पर मेरा असली कुतूहल नहीं मिट पाया।

एकाएक मेरे मन में आया कि कहूं : आपने किसी डाक्टर को क्यों नहीं
दिखलाया ? अपना इलाज क्यों नहीं करवाया आपने ?

लेकिन कहने जाकर भी ज़बान पर आकर अटक गई बात। क्या ऐसी बात
किसीसे कही जा सकती है ? क्यों उनकी स्त्री आधी रात को घर से निकाल
देती थी, क्यों उन्हें छोड़कर उनकी स्त्री ने एक दूसरे आदमी से शादी कर ली,
क्यों उस शख्स से शादी करने के बाद से उसके लगातार इतने बाल-बच्चे हुए—
इन बातों की चर्चा मैं किससे करता और सुनता भी कौन ! तब वे चॉप,
कटलेट, मुर्गी, गोश्त, मछली वगैरह की बातें ही बड़ी दिलचस्पी और चाव के
साथ कर रहे थे।

'इधर आने पर फिर कभी आइए मेरे यहां।'

मैं बोला, 'आऊंगा।'

दीनानाथ बाबू बोले, 'जल्दी ही आने की कोशिश कीजिए। अगले महीने
मैं रिटायर होकर लड़के के पास चला जाऊंगा, वहीं रहूंगा। उससे पहले ही
आइए।'

जिस बात के ना कहने का मैंने निश्चय किया था वही बात एकाएक मेरी
ज़बान से निकल गयी। बोला, 'आपकी स्त्री क्या लड़के के पास रहती हैं ?'

क्षण-भर के लिए अकबका गये दीनानाथ बाबू। बोले, 'क्यों ?'

'यों ही, खुद ही खाना पकाते हैं न आप, तभी पूछा। वे शायद दिल्ली ह
रहती हैं ?'

'नहीं, उनकी मृत्यु हो गयी है।' कहकर निर्लिप्त भाव से उन्होंने ए
चॉप मुंह में डाल लिया।

दीनानाथ भट्टाचार्य की तरह न जाने कितने आदमी अनादर और धिक्
को हजम करके इस संसार में जीवित हैं, इसका हिसाब किसने रक्खा है।
जीवित रहने के आग्रह में अमित साहसी हैं ये लोग। बार-बार खींचती है
मृत्यु, तो भी मृत्यु को भी चकमा देने में सक्षम हो जाते हैं ये। जीवन
असह्य हो जाता है तब इसका एकमात्र सहज प्रतिकार मृत्यु ही होता है।

को ही एकमात्र मित्र के रूप में देखते हैं तब ये। नेपोलियन जब नेपोलियन नहीं बने थे, असह्य हो उठी थी तब उनकी जीवन-यंत्रणा। जीवन-यंत्रणा मृत्यु-यंत्रणा से भी अधिक भयावह होती है, जिसका अनुभव लॉर्ड क्लाइव ने किया था। कितने अनजाने मनुष्य जीवन-यंत्रणा से संतप्त होकर छटपटा रहे हैं, उसका इतिहास बिखरा पड़ा है साहित्य के पृष्ठों में, काफ्का और बालजाक की रचनाओं में। यंत्रणा के प्रति कितना संवेदनशील होने पर महान लेखक बना जा सकता है, इस बात के प्रमाण हैं काफ्का और बालजाक। किन्तु बिना यंत्रणा के जीवन में आनन्द ही क्या! ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं जहां यंत्रणा नहीं है पर जीवन है। यंत्रणा के आकर्षण से मृत्यु की कामना करते हैं वे। ये लोग जीवित होते हुए भी मृत हैं, सबल होते हुए भी स्थाणु हैं।

ऐसे ही एक मृत व्यक्ति की यंत्रणा का साक्षी था मैं। केवल मैं ही नहीं, और भी बहुत-से थे। पर यंत्रणा के आकर्षण से उसमें जीवन के प्रति एक प्रचण्ड आग्रह उत्पन्न हो गया था, यह भी देखा है मैंने। मृत्यु में यंत्रणा का अनुभव होना भी अच्छा होता है और जीवन में यंत्रणा मिलना भी वांछनीय होता है।

ऐसी हालत में किसकी ताकत है कि धरती पर से इनसान की हस्ती को मिटा दे? इसीलिए विलियम फॉकनर ने कहा है : 'मानव का कभी अन्त नहीं होगा, आई डिक्लाइन टु ऐक्सेप्ट दि एण्ड ऑफ मैन'

उसी कहानी को सुनिये अब :

पंचम

यही एक खरावी है रेलवे लाइन की। यह खरावी भी है, साथ ही अच्छाई ……। एकदम मकान के आंगन के वीच में होकर रेलवे लाइन चली गयी है। …लियरी-डिस्ट्रिक्ट के सभी स्टेशनों का यही हाल है। भागा, मौजूदी, महूदा, …न्द्रपुरा—इन सभी जगह यही एक नियम चालू है। रेलवे के 'वावू अपनी …बीवी-वच्चों के साथ रेलवे लाइनों के वीच में इधर-उधर छूटी हुई जगहों में वने …क्वार्टरों में पुश्त-दर-पुश्त रहते आये हैं। अब हो सकता है यार्ड-फोरमैन है वाप। इस छोटी नौकरी से प्रमोशन पाकर यार्ड-मास्टर के पद तक पहुंच जाता है वह। लिहाज़ा लड़का, नाती, दामाद सव रेलवे की ही नौकरी में जाएंगे। फिर वे इसी रेलवे की नौकरी से ही एक दिन रिटायर होते हैं। इसके वाद एक दिन उन्हींके लड़के-नाती-पोते-दामाद फिर रेलवे की नौकरी में जाएंगे। इसी तरह वंश-परम्परा से शाखा-प्रशाखा फैलाकर सारे ज़िले पर राज करेंगे। ये लोग पहले हैं 'रेलवे-मैन', वाद में 'मैन'। यह सव इंजिन की आवाज़ से सोते हैं, फिर इंजिन की ही आवाज़ से जागते हैं। ऐसा अद्भुत मानव-समाज तुम्हें ढूंढ़े नहीं मिलेगा कहीं। इसीका नाम है रेलवे-कॉलोनी।

'भों !'

इस 'भों' की आवाज़ को सुनते ही वे समझ जाते हैं।

'कहते हैं : 'थर्टी-थ्री अप आ रही है रे…'

'थर्टी-थ्री-अप' में कितने डिव्वे हैं, कैसा इंजिन है उसका, कहां से आ रही है और कहां तक जाएगी—सव जानते हैं वे। रेलवे मैन के वच्चे रेल की लाइन पर पलकर ही वड़े होते हैं, फिर रेल की लाइन पर ही अपनी गिरस्ती विछाते हैं। फिश-प्लेटें, स्क्रू, नट, वोल्ट, स्लीपर, गेंगमैन, हमाल, डेड एण्ड वगैरह वहुत-से ऐसे शव्द हैं जिनके अर्थ वाहरी आदमी नहीं जानते, जानते हैं सिर्फ रेलवे मैन के वच्चे। यार्ड में शन्टिंग होते वक्त कभी इस, कभी उस फासले में होकर वैगन के नीचे से निकलकर लम्वे रास्ते का शॉर्ट-कट निकालना भी रेलवे मैन के वच्चे ही जानते हैं।

रेलवे के इन्हीं क्वार्टरों में शायद रहते हैं गार्ड, ड्राइवर, कंट्रोलर, या… मास्टर या लोको-शेड के टाइमकीपर।

यार्ड-फोरमैन सुब्रह्मण्यम् बाबू के परदादा चिंगलपेट से पैदल चलकर पहले-पहल इस अंचल में आये थे। आकर उस समय के मद्रासी एकाउंटेंट नरसिंहम् बाबू के घर ठहरे। उन्हीं नरसिंहम् बाबू ने अपनी लड़की की शादी उनके साथ कर दी और साहबों से कहकर इसी चन्द्रपुरा में उसे नौकरी भी दिलवा दी। और वह जो धारा चली थी, रुकी नहीं है अभी तक। उसी खानदान का सुब्रह्मण्यम् बाबू अब यार्ड-फोरमैन बनकर यहां विराजमान है। रिटायर होने से पहले यह सुब्रह्मण्यम् बाबू भी फिर अपने लड़के-नाती-दामाद को नौकरी में घुसाकर निश्चिन्त होगा।

लोहे के ग्रिल लगे छोटे-से बरामदे में से टाइमकीपर बाबू की बीवी ने दरवाजे को थोड़ा खोलकर पुकारा 'ओ गोविन्दराजन दीदी—ओ गोविन्दराजन दीदी!'

तमिलनाडु का गोविन्दराजन यहां नया लोको-क्लर्क बनकर आया है। उसीकी नवविवाहिता स्त्री के लिए था यह सम्बोधन। स्त्री का नाम जानना ही कौन है? किसीके जानने की बात भी नहीं। पति के नाम पर ही स्त्री का नाम अक्सर रख दिया जाता है।

आन्ध्र देश की लड़की है तो क्या हुआ, धड़ल्ले से बंगला बोलती है। बाप खड़गपुर में काम करता है, वहीं पालन-पोषण हुआ है।

गोविन्दराजन की स्त्री ने कहा, 'मुझे इस नाम से क्यों पुकार रही हो, दीदी? मेरा नाम नहीं है, क्या?'

टाइमकीपर बाबू की स्त्री बोली, 'होगा क्यों नहीं, मेरा भी तो अपना नाम है। पर मुझे उस नाम से क्या कोई पुकारता है? भई, मैं तो यहां आकर अपना नाम ही भूल गई हूं।'

इसके बाद दरवाजा खोलकर उसे अन्दर बुलाती है।

नयी बहू है। मुहल्ले के किसीसे तब तक अच्छी तरह परिचय नहीं हुआ था।

टाइमकीपर बाबू की स्त्री ने कहा, 'मेरे हाथ का पान तो खा लोगी तुम?'

गोविन्दराजन की स्त्री सिमटी-सी बैठ गयी चटाई पर। बोली, 'दीजिये न आप, पान खाने में क्या हर्ज है?'

टाइमकीपर बाबू की स्त्री बोली, 'बहुत-से लोग नहीं खाते हैं न, तभी पूछा था, हम लोग ब्राह्मण नहीं हैं न।'

'ब्राह्मण नहीं हैं तो क्या हुआ', नयी बहू ने टाइमकीपर बाबू की

लगती है। वहुत दिन से रेलवे कॉलोनी में रह रही है वह। उसी छुट-
जब वह खड़गपुर में पैदा हुई थी, तभी से। उसका नाम है गोदावरी।
पुर में वहुत-सी बंगाली लड़कियां सहेली थीं उसकी। उनके साथ पढ़ी हैं
में, उनके साथ बैठकर ताश खेली है और गप्पें हांकी हैं। बंगाली परि-
से उसका यह संपर्क नया नहीं था।

'आपको मैं क्या कहा करूं, दीदी ?'

'मुझे ?'

टाइमकीपर बाबू की बीवी को हंसी आ गयी इस सवाल को सुनकर।
यहां आकर गायत्री जैसे अपना नाम तक भूल गयी है। कलकत्ता की
लड़की है गायत्री, यहां के टाइमकीपर भुवन मजुमदार से शादी होकर जैसे
एकदम बंदिनी बन गयी है।

स्कूल में ज़्यादा पढ़ नहीं पायी थी गायित्री।

मामा कहते, 'ज़्यादा लिख-पढ़कर क्या होगा बेटी ? इससे बेहतर है
खाना-पकाना सीख लो, जिसकी जरूरत पड़ेगी ससुराल में।'

गायत्री बोली, 'भई, मुझे तुम टाइमकीपर दीदी कहा करना।'

'धत्, यह मैं कैसे कहूंगी, शर्म लगेगी मुझे।'

'लेकिन यहां सब मुझे इसी नाम से पुकारते हैं। तुम्हें अगर शर्म लगे तो
गायत्री दी कहना।'

'वाह, कितना अच्छा नाम है आपका, गायत्री ! मेरा नाम बड़ा खराब
है।'

'क्या नाम है तुम्हारा ?'

'गोदावरी !'

'क्यों, खराब नाम है ? गोदावरी तो एक प्रसिद्ध नदी का नाम है—गंगा,
गोदावरी, कावेरी...'

रेलवे कॉलोनी में स्त्रियों में इसी तरह जान-पहचान होती है। इसी तर
एक-दूसरे के घर आना-जाना शुरू होता है। इसी तरह घनिष्ठता होती है
फिर इसी तरह झगड़ा, लाग-डांट, मारपीट, खून-खराबा भी होता है।

इसी तरह आत्मीय परम आत्मीय बनते हैं, फिर आत्मीय ही परम
बन जाते हैं। कॉलोनी जितनी छोटी होगी, घनिष्ठता, मित्रता, शत्रुता उ
ही निविड़ होगी। एक दूसरे के घर की खबर लेकर पर-चर्चा के उद्दे
... में दौड़ा जायगा।

'ओ भाभी, सुनी है तुमने यह नई खबर ?'

'क्या खबर है रे, पूटी ?'

कण्ट्रोल-क्लर्क देसाई बाबू की स्त्री रसोई-घर में खाना बना रही थी। नई खबर की गंध पाकर हुलस उठीं। इस पूटी नाम की लड़की के पास बहुत-सी चटपटी खबरें रहती हैं। किसीके किसी भेद की बात का पता लगते ही घर-घर जाकर कह आती है। किस घर की बहू के पैर भारी हुए, किस घर की विधवा बुढ़िया रसोई-घर मे चोरी-चोरी मछली खाती है, दफ्तर में किसके पति पर कितना जुर्माना हुआ, या किस गृहिणी के पति को ऑफिस में ग्रेड मिला—सब जानती है पूटी।

पूटी ने कहा, 'मुझे क्या गरज है भाभी, दूसरो की बातो मे सिर खपाने की ?'

'अरे, क्या हुआ है बता न ?'

पूटी ने कहा, 'लोको-शेड का जो नया क्लर्क आया है गोविन्दराजन—जानती हो न ?'

देसाई-गृहिणी बोली, 'मैं कैसे जानूंगी ? कब आया ?'

'यही पिछले ही महीने तो आया है, बी-टाइप क्वार्टर मे ठहरा है—तुम्हे कुछ भी नही पता रहता भाभी।'

'तो फिर क्या हुआ ?'

'उसीकी नई दुलहिन के साथ हमारे टाइमकीपर बाबू की बीबी की बडी खट-ज़न्न हो गयी है, जानती हो।'

'एकाएक इस मद्रासी औरत से इतनी खट-ज़न्न कैसे हो गयी ?'

पूटी कम उमर की लड़की है तो क्या हुआ, उसके पेट मे दाढ़ी है। इस रेलवे कॉलोनी मे उद्भिद् की तरह बढ़ती जा रही है सबकी नजरो के सामने। न जाने कब पढ़ाई-लिखाई खतम करके सरस्वती माता से सब नाता तोड बैठी है! अब सिर्फ वह कोई खबर मिलते ही इस घर से उस घर, इस मुहल्ले से उस मुहल्ले मे घूमती-फिरती है।

उस दिन भी आई थी गोदावरी। दोपहर को मौका मिलते ही दफ्तर से आकर घर खाना खा जाता है गोविन्दराजन। इसके बाद गोदावरी को कोई काम नही रहता। छोटा-सा क्वार्टर है दरबे की तरह। घर मे एक तख्त डाल दिया जाय तो हिलने-डुलने की कोई जगह नही रहती। पीछे की ओर चौकोर आगन है तीन हाथ-चौड़ाई-तीन हाथ। उधर अधिक देर नही टिका जा सकता।

सामने की ओर वरामदे में आने पर यार्ड नज़र आता है—विशाल रेलवे यार्ड। उस यार्ड में से दो-एक लाइनें वेतरतीव इधर-उधर से छिटककर एकदम मकान के आंगन में आ घुसी हैं।

वह थर्टी-थ्री अप यहीं से छूटती है।

यहां से चलकर सीधे महूदा तक चली जाती है। इसके वाद वह ट्रेन उसी महूदा में दो घण्टे रुककर फिर सीधे यहीं चली जाती है। सीधे जाती है और आती है। मिक्सड् ट्रेन है यह। इसमें छह माल के वैगन हैं और दो मुसाफिरों के डिव्वे। 'चन्द्रपुरा से छूटकर हर स्टेशन पर मालगाड़ी कटती है और जुड़ती है। मुसाफिर चढ़ते हैं और उतरते हैं। इस तैंतालीस मील का फासिला तै करने में ही जैसे थर्टी-थ्री अप की जान निकल जाती है। एक-एक स्टेशन पार करती है और हांफने लगती है। थर्टी-थ्री अप के इंजन को जैसे हांफी की वीमारी है। जव मुन्नूस्वामी ह्विसिल की रस्सी को खींचता है, तव उस इंजिन के सिर से थोड़ी सफेद स्टीम वाहर निकल जाती है। और साथ ही साथ लगातार एक आवाज निकलती रहती है : पी-ई-ई-ई। वहुत पुराना इंजिन है। मुन्नूस्वामी भी वहुत दिनों का ड्राइवर है। खलासी से फायरमैन हुआ था। इसके वाद एक दिन फायरमैन से ड्राइवर भी वन गया। पर खुश नहीं है मुन्नूस्वामी। मिक्सड् ट्रेन चलाकर ही ज़िन्दगी गुज़ारनी पड़ रही है उसे।

मुन्नूस्वामी कहता है, 'यह साला भी कोई इंजिन है, यह तो खच्चर है।'

फायरमैन रशीद कहता है, 'एक तो है मिक्सड् ट्रेन, तिसपर है व्रांच लाइन—इसके तो मां-वाप ही नहीं है रे।'

रात के आठ वजे थर्टी-थ्री अप लंगड़ाते-लंगड़ाते आकर इसी गोविन्द-राजन के घर के सामने के आगन को पार करके एकदम डेड-एण्ड साइडिंग में जाकर खड़ी रहती है। माल के डिव्वों को मार्शलिंग यार्ड में छोड़ देता है मुन्नू-स्वामी। वाकी दो मुसाफिरों के डिव्वों को इसी गोविन्दराजन के क्वार्टर के सामने छोड़कर फिर इंजिन को लेकर शेड के भीतर रख आता है।

वहुत दिनों से चला आ रहा है यह क्रम।

थर्टी-थ्री अप जिस दिन से चालू हुई है, उसी दिन से चला है यह क्रम। भोर के पांच वजे यहां से रवाना होकर वीच में डिव्वे काटते-जोड़ते महूदा पहुंचना। फिर उसी दिन रात के आठ वजे लौटकर दोनों वोगियों को काटकर रखना।

टाइमकीपर वावू हैं भुवन मजुमदार। थोड़ा आरामतलव आदमी है।

आरामतलब होने की वजह से ही थोडा खुदगर्ज है, और खुदगर्ज लोग जैसे होते हैं भुवन मजुमदार भी वैसा ही है। तिसपर है रात जगने की नौकरी।

तमाम रात जगकर नाइट ड्यूटी करके लौटने के बाद मिजाज यों ही बेहद बिगडा रहता है। घर के अन्दर पैर रखते ही धधक उठता है। कहता है, 'शरबत कहां है ? मेरे लिए शरबत नहीं बनाया ?'

गायत्री अचम्भे में आ गयी। बोली, 'शरबत ? किसका शरबत ?'

'यह क्या ? कहा नहीं था मैंने कि एक गिलास शरबत बनाकर रखना ? मट्ठे का शरबत ? देख रहा हूं तुम्हें मेरी किसी बात का खयाल नहीं रहता।'

गायत्री शर्मिन्दा हो जाती है।

भुवन मजुमदार बोला, 'खयाल रहेगा भी क्यों ? मैं साला खटते-खटते मर रहा हूं, इससे तुम्हें क्या वास्ता ? कुछ भी हो मुझे, तुम्हारी बला से।'

गायत्री बोली, 'क्या कह रहे हो तुम ? मुझे तुम्हारा खयाल नहीं रहता।'

'मेरा खयाल करते-करते तो तुम एकदम मरी जा रही हो ·'

तब तक एक गिलास मट्ठे का शरबत लेकर गायत्री सामने जा खडी हुई।

छोटे-छोटे बच्चों ने तब उस छोटे-से क्वार्टर में भगदड शुरू कर दी थी। उन्हें पता तक नहीं है कि वे क्यों इस धरती पर आए हैं, कौन उन्हें धरती पर लाया है। वे सिर्फ इतना ही जानते हैं कि एक शख्स को 'बाबा' कहना चाहिए, और एक को 'मां'। उससे ज्यादा किसी और सम्पर्क की बात उनके दिमाग में नहीं आती। दिमाग में लाना भी नहीं चाहते।

एक तो शरबत की प्यास, उसके ऊपर नाइट ड्यूटी। टी०एस० साहब का उत्पात चल रहा है कई दिन से। अपना मिजाज और काबू में नहीं रख पाया भुवन मजुमदार।

लडके की ओर देखकर चिल्ला उठा, 'निकलो सब यहां से, भागो।'

'उन्हें डांट क्यों रहे हो बताओ तो, वे तुम्हारा क्या बिगाड़ रहे हैं ?'

'क्या बिगाड़ रहे हैं ?'

भुवन मजुमदार ने जैसे गायत्री से ही जानना चाहा—'क्या नहीं बिगाड़ रहे हैं ?'

यानी वे क्यों इस दुनिया में आये, भुवन मजुमदार ने जैसे इसकी कैफियत तलब की गायत्री से।

गायत्री बोली, 'गुस्सा आने पर देखती हूं तुम्हारा दिमाग ठिकाने नहीं रहता। लो, पकड़ो गिलास, मुझे और भी काम है।'

कहकर गिलास को आगे बढ़ा देते ही भुवन मजुमदार ने सामने खड़ी एक लड़की को पकड़कर एक तमाचा जड़ दिया—'मर हरामजादी, मर क्यों नहीं जाती।'

एकाएक मार खाकर लड़की जोर से रो पड़ी।

भुवन मजुमदार आपे से बाहर हो गया। मार के ऊपर मार जमा बैठा।

'मर, मर, मर मुंहझौंसी, मर जा...'

एकाएक भुवन मजुमदार जैसे जल्लाद बन गया एकदम।

गायत्री और बरदाश्त न कर सकी इस काण्ड को। सीधे झपट पड़ी भुवन मजुमदार के ऊपर। मजबूती से दोनों हाथों से जकड़ लिया उसे।

इसके बाद लड़की को गोद में लेकर, उसकी आंखें और मुंह आंचल से पोंछकर भुवन मजुमदार की नजर की ओट में ले गयी।

इस रेलवे कॉलोनी के अजीब आदमियों की भीड़ में कब किस घर में कौन-सा नाटक तैयार होता है यह किसीसे छिपा नहीं रहता। आदमियों की घिचपिच है और मकान भी सटे हैं एक-दूसरे से। तभी हो सकता है कि जैसे आदमियों के मन में भी लगाव पैदा हो जाता है।

पूंटी रोज-रोज आकर घरों में घुस पड़ती है। घर-घर घूमना ही उसका काम है। घूम-घूमकर खबरें फैलाती रहती है नमक-मिर्च मिलाकर। इस घर की खबर देसाई-गृहिणी को पहुंचायेगी। देसाई-गृहिणी के घर की खबर लाकर फिर भुवन मजुमदार की बीवी को देगी।

उस दिन भुवन मजुमदार के घर आकर पुंटी अचरज में पड़ गयी। बोली, 'अरे, भाभी, तुमने अभी तक नहीं खाया!'

गायत्री बोली, 'बैठो, मछली की भाजी बना लूं मैं तब तक।'

'अच्छा, आज मछली मिल गयी तुम्हें? कहां मिली?'

इसके बाद बातें करते-करते नीची आवाज में बोली, 'जानती हो भाभी, कल गोविन्दराजन बाबू के यहां क्या हुआ था?'

'क्या हुआ था रे?'

'तुम किसीसे कहीं कह मत देना भाभी, किसीको पता नहीं चला है अभी तक।'

'तू बता न, मैं किसीसे नहीं कहूंगी।'

पूंटी ने कहा, 'गोविन्दराजन बाबू कल बेहद शराब पीकर घर लौटे थे—जानती हो!'

'तुझे कैसे पता चला ?'

इस तरह की बातों का पता अकेली पट्टी को लग जाय और किसीको न लगे, ऐसा सचमुच नहीं होता। यहां कोई भी बात छिपी नहीं रह सकती। एक घर में अगर कोई घटना घटती है तो दूसरे घर के आदमी को उसकी टोह लगना ही स्वाभाविक बात है। दूसरे लोग उसकी फिर चर्चा करेंगे आपस में। दस आदमी मिलकर गुज-गुज, फुस-फुस करेंगे—इसीमें तो मजा है। किसीके यहां अगर कोई घटना न घटे तो ये लोग किसके सहारे रहेंगे ? कैसे जियेंगे ? रेलवे कंपनी ने भी शायद यही सोचकर ये क्वार्टर इतने एक-दूसरे से सटाकर बनाये हैं, जिससे यहां के लोग पर-चर्चा करके जिन्दा रह सकें। पर-चर्चा में मशगूल रह सकें। किस घर की बहू पति की नाइट ड्यूटी की आड़ में मजा करती है, किस घर के मालिक चोरी-चोरी शराबखाने से शराब पीकर आते हैं, इन बातों को जिससे सब जान जाय इसलिए शायद रेलवे कम्पनी ने यह इंतजाम किया है। इन सब बातों में फंसे रहने पर वे तनख्वाह बढ़ाने के मामले में दिलचस्पी नहीं लेंगे। हड़ताल भी नहीं करेंगे। पुश्त-दर-पुश्त इसी तरह वे वाद-विवाद में जीवन बिता देंगे।

और कंपनी का यह उद्देश्य पूरी तरह सार्थक हो गया था।

वहां जब उस माहौल में मैं पहुंचा तब चन्द्रपुरा में बहुत तब्दीलियां हो चुकी थीं। बहुत कुछ अदल-बदल गया था। कंट्रोल क्लर्क देसाई बाबू के बाल पक गये थे तब। देसाई बाबू की स्त्री भी दुबली हो गयी थी तीन-चार बाल-बच्चों की मां बनकर।

उस पट्टी की भी शादी हो गयी थी इस दरम्यान। वह अपने दूल्हा के साथ खड़गपुर चली गयी थी। इसके बाद एक दिन मांग का सिंदूर, हाथ का लोहा[1] (लोहे की चूड़ी) और शाखा (शंख की चूड़ियां) खोकर फिर मायके लौट आयी है।

और गायत्री भाभी ?

उसी गायत्री भाभी की कहानी ही तो सुनाने बैठा हूं। भुवन मजुमदार छुटपन में अच्छा विद्यार्थी था। युद्ध के पहले का युग था वह। तब एम० ए० पास करके तीस रुपये महीने की नौकरी पाकर लोग अपने को भाग्यशाली मानते थे। कहीं कोई वेकेन्सी नहीं रहती थी, कहीं कोई भी नौकरी नहीं खाली

1. बंगाल में सुहागिन स्त्रियों को यह पहनना पड़ता है।

होती थी। कहीं कोई मरता भी नहीं था। उसी युग में भुवन मजुमदार मुहल्ले के किसी आदमी की सिफारिश से इस मामूली नौकरी में घुस पड़ा था। शुरू में इधर-उधर थोड़ा तवादला हुआ था। इसके वाद इस चंद्रपुरा में आकर इस तरह खूंटी गाड़कर वैठ गया कि उसके तवादले की वात ही नहीं उठी। भुवन मजुमदार तव जैसे वहीं मुस्तकिल हो गया।

इसके वाद नौकरी पाने का मतलव ही होता है शादी का रास्ता साफ होना। गायत्री नाम की लड़की के साथ शादी भी हो गयी एक दिन। मां न हो, वाप न हो, तो भी थी तो लड़की। कसा हुआ वदन था तव उसका। तव नौकरी पर से लौटकर इस तरह खर्राटे भर कर सोता नहीं था वह। तव वीच-वीच में प्यार की वातें भी किया करता था गायत्री से।

भुवन मजुमदार कहता, 'मेरी इस मामूली-सी गिरस्ती में तुम कतई नहीं फवती हो जी।'

प्यार-भरी वातें सुनकर सचमुच विगलित हो जाया करती थी तव गायत्री। अव तक हमेशा चाचा की गिरस्ती में खटकर दिन काटने के वाद एकाएक प्यार-दुलार पाकर अपने को कृतार्थ मानने लगी थी। होने दो छोटा-सा क्वार्टर, होने दो कम तनख्वाह की नौकरी, होने दो रेलवे का टाइम-कीपर तो भी उसे लगा था कि संसार में शायद सुख भोगा जा सकता है जीवित रहकर। इस घर या उस घर से अकसर निमंत्रण मिलता रहता था। उसे नये-नये गहने वनवा दिया करता था तव भुवन मजुमदार। तनख्वाह के सौ रुपये ाकर वह वीवी के हाथ पर धर देता था।

कहता था, 'यह लो।'

गायत्री भी रुपयों को लेकर माथे छुआती, फिर छोटे टिन के ट्रंक में रख ी। चन्द्रपुरा में हफ्ते में एक दिन हाट लगता था। तीन रुपये के आलू-प्याज रीदने से ही पूरा हफ्ता चल जाता था। फिर मछली खाते हो तो ठीक, नहीं ाना चाहते हो न खाओ। खाने का ज्यादा शौक गायत्री को कभी नहीं था। मा होते-होते ट्रंक भर जाता था नोटों से। भुवन मजुमदार के दफ्तर चले ाते ही सव काम खतम। तक जहां जी चाहे, आओ-जाओ। देसाई वावू की त्री थी, लोको-क्लर्क गोविन्दराजन वावू की स्त्री थी। और थी पूंटी। वह भी एक ज़माना था गायत्री का जव वह ताश खेलकर, पान खाकर, गप्पें हांककर वक्त ज़ाया किया करती थी।

लेकिन धीरे-धीरे जैसे सव कुछ पलट गया चन्द्रपुरा में। जो कंट्रोल-क्लर्क

था वही कंट्रोलर बन गया एक दिन। तब उसी देसाई बाबू की स्त्री भी बदल गयी। दो सौ रुपये तनख्वाह पाने वाले कंट्रोलर की बीवी तब सीधे मुह बातें ही नहीं करती थी और अच्छी-अच्छी साड़िया खरीदती थी, गहने खरीदती थी। तब देसाई-गृहिणी के घर जाने पर बैठने तक को नहीं कहती थी। पान भी नहीं देती थी खाने को पहले की तरह। सौ रुपये तनख्वाह पाने वाले टाइमकीपर की बीवी को बैठने और पान खाने देती भी कैसे ?

और आखो के सामने गोविन्दराजन आया था लोको-क्लर्क बनकर। तनख्वाह थी पचास रुपये। उसी गोविन्दराजन की भी एक सौ पचहत्तर रुपये तनख्वाह हो गयी एक दिन। गोविन्दराजन की बीवी जो इतना आया करती थी, वह भी पति की तनख्वाह बढ़ने के साथ ही साथ जैसे तबदील हो गयी। पहले दोपहर को इमली के पानी के साथ चावल खाकर पान चबाते-चबाते आकर काफी देर तक गायत्री से गपशप करती थी। आखिर मे उसने भी तकरीबन छोड़ दिया आना।

गायत्री खुद भी गई है गोविन्दराजन बाबू के यहा।

'क्यों भई, तुम तो बहुत दिन से नहीं आ रही हो मेरे घर ?'

कोई जबान से जो कुछ कहे, लेकिन असलियत तो हो ही जाती है जाहिर। जब इतने दिन से है चन्द्रपुरा मे, तब कौन कैसा है नहीं जानेगी गायत्री। यहां के सबको पहचान लिया है गायत्री ने। चन्द्रपुरा के सारे लोगो की तनख्वाह बढ़ गयी, भुवन मजुमदार की तनख्वाह क्यों नहीं बढ़ती ?

तब बच्चा हो गया था।

भुवन मजुमदार ने बड़े लाड़ से उसका नाम रखा था तपन—हालाकि 'खोका' (बच्चा) कहकर पुकारते थे दोनो। और उसके अगले साल ही हुई खोकी। खोकी यानी पद्म। पद्मरानी। और यह जो शुरुआत हुई फिर उसने जैसे खतम होने का नाम ही नहीं लिया। हर साल बच्चा जनने पर किसीकी सेहत ठीक रह सकती है ? भुवन मजुमदार नाइट ड्यूटी से लौटकर बिस्तर पर पड़ जाता था बेखबर, उसकी नींद खुलती थी दिन के चार बजे। इसके बाद उसे चाहिए होती चाय। सिगरेट। गिरस्ती मे किसीको खाने को मिले या न मिले, उसे सिगरेट चाहिए ही।

लड़के-लड़कियों से भरा था घर। घर यानी एक कमरा। उसी एक ही कमरे मे तो था सब कुछ। उसीमें ही बैठना-खाना-सोना। फिर जहा-तहा सिगरेट की राख फेंककर गंदा क्यों किया जाता है उसे ? राख फेंकने के

एक टिन का डिब्बा तो साथ रक्खा जा सकता है।

मामूली सिगरेट को राख को लेकर कई दिन वाक्‌युद्ध शुरू हो जाता था। भुवन मजुमदार कहता, 'मेरा घर है, मेरी जहां तबियत होगी राख फेंकूंगा, इसमें तुम्हारा क्या ?'

गायत्री कहती, 'घर तुम्हारा हो सकता है, लेकिन साफ तो मुझे ही करना पड़ता है।'

'अगर साफ करना पड़ता है तो करो।'

'लेकिन कब करूं मैं सफाई, तुम्हीं बताओ। मुझे क्या पल-भर भी फुरसत मिलती है बैठने की ?'

इतनी बहस, इतनी झखझख का वक्त या धीरज कुछ भी नहीं होता भुवन मजुमदार के पास। कहता है, 'देखो, इतनी फालतू बातें करने का वक्त नहीं है मेरे पास…'

कहकर फिर एक नयी सिगरेट सुलगाता और जली दियासलाई की सींक को फर्श पर फेंक देता।

इसी तरह चल रहा था इस घर में। हो सकता है इसी तरह सबकी गिरस्ती चलती हो। पति-पत्नी में झगड़ा होता है, मेल होता है, कभी-कभी बातचीत तक बन्द हो जाती है। तो भी गिरस्ती जिस तरह चलनी चाहिए उसी तरह चलती है। कुछ बाल-बच्चे हो जाते हैं। उम्र बढ़ती है। झगड़ा, मान-अभिमान, अभियोग भी चलता रहता है। इन्हें लेकर कभी कोई खास ज्यादती नहीं करता।

लेकिन गायत्री को न जाने क्या हो गया।

कभी ऐसा काम किसीने नहीं किया चन्द्रपुरा में। यह जो इतने लंबे अरसे से पुश्त-दर-पुश्त देसाई, गोविन्दराजन, भुवन मजुमदार का दल, जो आदियुग से इस कालोनी में रहता आया है, उनमें से भी किसीने इसकी कल्पना नहीं की थी। यहां तक कि मुन्नूस्वामी के बाप-दादा जो इस अंचल के लोको डिपार्टमेंट में काम कर गये हैं, उनमें से भी कोई नहीं सोच पाया था कि ऐसा होगा। फायरमैन रशीद, रशीद के खान्दान में भी किसीने कभी नहीं सोजा था कि ऐसा हो सकता है। ऐसा ही था यह वाकिया।

दरअसल थर्टी-थ्री अप वहां से छूटती थी भोर के समय। यानी स्टेशन के प्लेटफार्म से ट्रेन चलती थी सुबह के छह बजे। लिहाजा ऐसी हालत में भोर के पांच बजे ही मुन्नूस्वामी को लोको-शेड में हाज़िर हो जाना पड़ता। वहां से

इंजिन निकालकर ले जाना पड़ता साइडिंग में, जहां पर थर्टी-थ्री अप गाड़ी के खाली डिब्बे तमाम रात पड़े रहते हैं। वहीं गाड़ी की धुलाई होती है, झाड़-पोंछ होती है, बैटरी की जांच होती है। बैटरी की जांच करके इलेक्ट्रिशियन सार्टिफिकेट देता है। इसके बाद मुन्नूस्वामी और रशीद इंजन को लेकर वहां हाजिर होते हैं। वहीं भुवन मजुमदार के क्वार्टर के आंगन के सामने। वहां आकर गाड़ी के साथ जोड़ देते हैं इंजिन को। फिर उसी भोर साढ़े-पांच बजे से ही शुरू कर देता है गाड़ी को खींचना।

यही सिलसिला बहुत अरसे से चला आ रहा है।

इस नियम को सभी जानते हैं चन्द्रपुरा में। मुन्नूस्वामी बहुत दिन से इस थर्टी-थ्री अप और थर्टी-टू डाउन को चलाता आ रहा है। उसे भी बिलकुल हिफ्ज हो गया है यह टाइम-टेबल। और सिर्फ मुन्नूस्वामी ही नहीं, जो लोग चन्द्रपुरा में रहते हैं, सब जानते हैं। वह देसाई बाबू, गोदावरी, पी.टी. गोविन्दराजन, भुवन मजुमदार, गायत्री से लेकर कोई ऐसा नहीं है जो न जानता हो।

लेकिन उस दिन थर्टी-थ्री अप के इंजिन को स्टार्ट देते ही एक दर्दभरी चीख सुनाई दी। मुन्नू स्वामी ने सुना, रशीद ने भी।

फौरन मुन्नूस्वामी ने घच् से ब्रेक लगा दिया। सजगता का परिचय दिया उसने ब्रेक लगाकर। न लगाता तो और भी क्षति हो जाती। पर जितनी क्षति हो गयी वह भी कम भयंकर नहीं थी।

उस इंजिन के नीचे से कोई चिल्ला उठा: 'अरी मैया, मर गयो।'
एक्सीडेंट एक्सीडेंट ही होता है।

प्लेटफार्म में अगर कोई ट्रेन से दब जाता है तो अस्पताल से डाक्टर आता है, नर्स आती है, स्ट्रेचर आता है। ट्रेन के छोड़ने में देर हो जाती है। कंट्रोल में, हेड क्वार्टर में खबर जाती है। इसके बाद यथासमय तहकीकात करती है पुलिस। और इसके बाद एक दिन सारी चीज दफन भी हो जाती है बेमालूम। आदमी का दब जाना और गाय-भैंस-बकरी का दब जाना बराबर माना जाता है। दोनों ही हैं रन-ओवर केस!

लेकिन इस बार दूसरी ही तरह का था केस।

सरदी के मौसम में सुबह के साढ़े पांच का मतलब रात ही होता है। रेलवे-कॉलोनी की रात। गरज यह कि कंट्रोल ऑफिस तो सारी रात ही खुला रहता है। दिन-रात चौबीस घंटे ही ड्यूटी होती है। और लोको-शेड से से

दिन-रात घर्घर आवाज़ निकलती रहती है। उस आवाज़ के साथ ही साथ थर्टी-थ्री अप के इंजिन की स्टीम छोड़ने की हिस-हिस आवाज़ भी शामिल है। मुन्नूस्वामी जो उस चीख को सुन पाया यह भी शायद किस्मत की ही बात है।

ब्रेक लगाकर ही मुन्नूस्वामी इंजिन से नीचे उतर आया।

उतरकर उस अंधेरे में ही घटना को देखकर होश उड़ गये उसके।

'रशीद!'

फायरमैन, खलासी, ड्राइवर सबने एकसाथ नीचे झुककर देखा।

एक पैर बिलकुल कट गया है। सिर्फ शरीर से लगा हुआ है, किसी तरह। और वह जगह रंग गयी है खून से।

रशीद ने पहचान लिया अंधेरे में ही।

बोला, 'अरे, यह तो टाइमकीपर बाबू की स्त्री है।'

तब भी शायद थोड़ा होश था गायत्री को। गले से कराहने की आवाज़ निकल रही थी। चीं-चीं करके कह रही थी, 'अरे मर गयी-मर गयी रे!'

दौड़ते-दौड़ते जाकर रशीद ने ही कंट्रोल-ऑफिस में डिप्टी को वह खबर दी थी। डिप्टी की ड्यूटी तब खतम होने वाली थी। रात के आखिर में तब चाय पीने का वक्त था। और तभी आ गया यह झमेला!

नन्दी बाबू था डिप्टी की ड्यूटी पर।

पूंटी का बड़ा भाई है भोला नन्दी। यहां आकर पहले पिता सत्य नन्दी रेलवे की नौकरी में घुसे। बहुत दिन पहले की बात है यह। तब बेचाराम बाबू थे यहां के टाइमकीपर। उसी बेचाराम बाबू ने सत्य नन्दी को कहा था, 'तुम्हारे खान्दान में कभी किसीने रेलवे की नौकरी नहीं की, मैं कैसे तुम्हें रेलवे की नौकरी दिलाऊं?'

सत्य नन्दी ने कहा था, 'आप साहब से कह दीजिए कि मैं आपका भांजा हूं।'

बेचाराम बाबू ने कहा था, 'भई, यह कैसे हो सकता है। साहब को तो हो सकता है कुछ पता नहीं लगेगा, लेकिन यहां के बंगाली बड़े खुराफाती हैं, वे जाकर सारी बातें बतला आयेंगे साहब को।'

जो भी हो, आखिर में सत्य नन्दी को नौकरी मिल गयी थी, मगर दूसरे रास्ते से। सिर्फ नौकरी ही नहीं मिली, वही सत्य नन्दी यहां का चीफ कंट्रोलर बन गया—और उसी बेचाराम बाबू को हलाकान होना पड़ा उसके हाथों।

यह किस्सा बाद मे सुनाऊंगा।

उसी सत्य नन्दी के बेटे भोला नन्दी ने ऐन तभी गरम चाय लाने को कहा था चपरासी से। एल्यूमिनियम का गिलास लेकर चाय लाने चला गया था चपरासी। और जेब से एक सिगरेट भी निकालकर सामने ही रख दी थी भोला नन्दी ने। चाय की चुस्की लेकर ही सिगरेट जलाने का इरादा था उसका। ऐसे वक्त थर्टी-थ्री अप का फायरमैन रशीद खबर ले आया—'सर, एक्सीडेंट हो गया है।'

एक्सीडेंट का नाम सुनते ही कंट्रोल ऑफिस का सिर चकरा जाता है। बात कान में जाते ही भोला नंदी चौंक पड़ा, 'कहां हुआ है एक्सीडेंट ?'

'दस नम्बर साईडिंग मे।

'क्या हुआ है ? डिरेलमेंट ?'

'नही, एक आदमी कट गया है—एक औरत।'

'कहां की औरत है ?'

'यह तो नही जानता, सर।'

भोला नंदी को तब खून का दौरा होने लगा था। तमाम रात ड्यूटी करने के बाद एक्सीडेंट की खबर पाकर किसका जी ठिकाने रह सकता है।

पूछा, 'तो जिन्दा है या मर गयी ?'

'सर, अभी चीं-चीं कर रही है।'

मर जाने पर कोई खास झमेला नही होता। लेकिन जिन्दा रहने पर बखेड़ा बहुत बढ जाता है। फर्जअदाई की कार्रवाई लंबी हो जाती है। डाक्टर को अस्पताल मे टेलीफोन पर खबर देनी पडती है, हेड आफिस में अरजेण्ट मैसेज भेजना पडता है, कॉपी यानी नकल भेजनी पडती है चीफ मेकेनिकल इंजीनियर को। अकेले उसे ही नही, एक गड्डी नकलें भेजनी पड़ती है हजारों आदमियों को।

पारा चढ गया भोला नंदी का। धत्तेरे एक्सीडेंट की ऐसी की तैसी! अब थर्टी-थ्री अप फजीहत मे पड गई। लाइन-क्लियर दे दिया गया था—उसे कैंसिल करना पड़ेगा। महूदा खबर भेजनी पड़ेगी कि थर्टी-थ्री अप तीन घंटे लेट जाएगी आज।

'तो तुम लोगों ने उस औरत को खतम क्यों नहीं कर दिया एकदम ? सारा झंझट खतम हो जाता।'

रशीद मुसकराया। डिप्टी कंट्रोलर के इस गुस्से का मतलब वह

है। वह जानता है कि सारी रात ड्यूटी करने के बाद इस तरह का गुस्सा कुदरती होता है।

एक-ब-एक सामने का टेलीफोन बज उठा।

भोला नंदी ने टेलीफोन उठाकर कहा, 'हैल्लो'''

उधर से पूंटी की आवाज़ सुनाई पड़ी, 'दादा, गजब हो गया।'

'क्यों, क्या हुआ ? कहां से बोल रही है तू ?'

हांफते हुए पूंटी बोली, 'यहीं गोविन्दराजन बाबू के घर से। भुवन मजुमदार की स्त्री गायत्री भाभी ने आत्महत्या कर ली है दादा !'

'किसने आत्महत्या की है ?'

जैसे स्पष्ट सुनते हुए भी बात पर विश्वास करने की तबियत नहीं हुई उसकी। दिमाग चकरा गया भोला नंदी का।

'किसने आत्महत्या की है ?'

'हम लोगों की गायत्री भाभी ने।'

'गायत्री भाभी ने !'

भोला नंदी के हाथ में रखी सिगरेट जमीन पर फस् से गिर पड़ी।

●

यह सब घटना बहुत दिन पहले की है। मैं जब चन्द्रपुरा में पहुंचा तब पूंटी विवाहित होकर खड़गपुर चली गई थी। वहां से विधवा होकर लौट भी आयी थी फिर मायके। चन्द्रपुरा के कंट्रोल ऑफिस में तब और आदमी ले लिये गए थे।

बैचलर था तब मैं। ड्यूटी के बाद कहीं जाने की जगह नहीं थी मेरी। सिक्सटीन डाउन के चले जाने के बाद प्लेटफार्म भी खाली हो जाता था। न कोई क्लब था, न कोई इन्स्टीट्यूट। नाम के लिए एक इन्स्टीट्यूट था जरूर, लेकिन उसमें हम जैसा कोई नहीं जा पाता था। वहां गार्ड और ड्राइवरों का जुआ चलता था दिन-रात।

मैं रहता था बंगालियों के एक मेस में। वहां एक कमरे में चार आदमियों के रहने की व्यवस्था थी। सुबह बिस्तर लपेटकर प्लेटफार्म चला जाता था चाय पीने। वहां बैठकर अखबार देखते-देखते काफी देर हो जाती थी। तब दफ्तर जाने की जल्दी पड़ती थी।

हम लोगों का दफ्तर कुछ दूसरे ही ढंग का है। कभी सुबह आठ बजे से ड्यूटी होती है, कभी शाम के चार बजे से। फिर कभी रात के बारह बजे से।

जपने की माला की तरह घूमती रहती थी आठ घंटे की यह ड्यूटी।

रेलवे के लोगों के साथ रेलवे की बातों के अलावा और क्या बातें करना?

सुबह से रात तक सिर्फ रेलवे की ही बातें होती।

भोला नंदी तब रेंगते-रेंगते चलकर चीफ कंट्रोलर बन गया था।

कहता था वह, 'अरे, तुम लोग तो अब स्वराज के जमाने में रेलवे की नौकरी में आये हो, ब्रिटिश जमाना तो देखा नहीं तुम लोगों ने।'

ब्रिटिश जमाने में रेलवे की नौकरी कितनी खराब थी उसका किस्सा सुनता था नन्दी बाबू की जबान से।

' जानते हो, कैलाधन साहब थे तब चीफ कंट्रोलर, मैं था डिप्टी। एकाएक थर्टी-थ्री अप का इंजिन रुक गया। मैंने नाइट ड्यूटी करके तभी सिगरेट जलाने से पहले चाय मंगवायी थी। अकस्मात् सुना कि रन-ओवर केस हो गया है, आदमी दब गया है। वह जो तपन मजुमदार है, उसकी मां आत्महत्या करने गई थी थर्टी-थ्री अप के इंजिन के नीचे।

' भुवन मजुमदार तब टाइमकीपर की नौकरी से रिटायर हो चुका था। तपन को लगा दिया था गार्ड की नौकरी में।'

मैंने पूछा, 'क्यों? आत्महत्या करने क्यों गयी?'

भोला नन्दी ने कहा, 'मतिभ्रम! मति न मारे जाने से कोई ऐसा करता है? और हम लोगों की मुसीबत!'

पूछा, 'क्यों? आप लोगों की मुसीबत क्यों?'

भोला नन्दी जवाब देता, 'अरे बाबा, तुम लोगों ने तो उस जमाने में नौकरी नहीं की है। कैलाधन साहब बात-बात में हम लोगों को 'ब्लडी बास्टर्ड' कहकर गाली देते थे। सुभाष बोस तक को उन दिनों 'ब्लडी बास्टर्ड' कहकर गाली देता था वह, हम लोगों को सुना-सुनाकर। हम लोगों को चुपचाप सहना पड़ता था सब।'

उन दिनों की बातें मैंने बाद में दूसरे लोगों के मुंह से भी सुनी हैं। तब लड़ाई का जमाना था। दिन में दस मिलिटरी स्पेशल छूटती थीं। सब जाती थीं कोहिमा की ओर। अंग्रेज लड़ाई में हार रहे थे। और रेलवे के ऐंग्लो-इण्डियन मुलाजिमों पर वज्राघात हो रहा था। उस समय सब रोज रात को सुभाष बोस का भाषण टोकियो रेडियो से चोरी-चोरी सुना करते थे। सब साहब गुस्से के मारे लाल-पीले हुए जा रहे थे एकदम। जवाहरलाल नेहरू को कैद कर लिया था अंग्रेजों ने, महात्मा गांधी को भी कारागार में —

था। लेकिन इतना सब होने पर भी ऐंग्लो-इण्डियनों का गुस्सा दूर नहीं हुआ। सारा गुस्सा वे निकालना चाहते थे हिन्दुस्तानियों को गालियां देकर। हिन्दुस्तानियों को भद्दी-भद्दी गालियां देने पर ही जैसे अंग्रेज लोग लड़ाई में जीत जायेंगे। इसलिए वात-वात में फाइन करते, वात-वात में गाली देते। थर्टी-थ्री अप के एक्सीडेंट की रिपोर्ट की कॉपी सवको ठीक तरह नहीं पहुंचाई गई थी, इसी वजह से भोला नन्दी पर भी दस रुपया जुर्माना हो गया था।

एक दिन मैंने भी पूछा था गायत्री मौसी से, 'मौसीजी, आप आत्महत्या करने क्यों गयी थीं?'

तपन मजुमदार कहता, 'दिमाग खराव हो गया था मां का।'

गायत्री मौसी चिल्ला उठतीं, 'तू चुप रह रे! मेरी तकलीफ को समझा कभी किसीने! अगर समझा होता तो यह दुर्दशा होती मेरी!'

कहकर विस्तरे पर पड़ी-पड़ी विलख-विलखकर रोती गायत्री मौसी। रुकना नहीं चाहता था उनका वह रोना।

भुवन मजुमदार तव टाइमकीपर की नौकरी से रिटायर होकर लड़के की कमाई पर ज़िन्दगी गुज़ार रहा था। उसका खास काम था स्त्री की सेवा करना।

मौसाजी कहते, 'वेकार क्यों रो रही हो तुम? शांत हो जाओ न।'

मौसी कहती, 'रोऊं क्यों नहीं? वह कहता है कि मेरा दिमाग खराव हो गया था। ऐसे नालायक लड़के को भी अपनी कोख में धारण किया था मैंने।'

गायत्री मौसी के इस तरह रोने के तपन के घर के लोग आदी हो गए थे। कभी-कभी इस वात को लेकर लड़के-लड़की मज़ाक भी उड़ाते थे उसका।

'अच्छा मां, तुमने कैसे इंजिन के तले सिर दे दिया? डर नहीं लगा तुम्हें?'

कितनी वार इस सवाल का जवाव देना पड़ा है गायत्री को, उसका कोई हिसाव नहीं। पन्द्रह-सोलह साल पहले घटी थी यह दुर्घटना। रेलवे के एक्सीडेंट सेक्शन में वह फाइल शायद अव भी मौजूद होगी। उस एक्सीडेंट के वाद सवने मिलकर अर्ज़ी भेजी थी कि यार्ड की इस जगह को रेलिंग से घेर दिया जाए। आदमी तो आते-जाते ही हैं, गाय-वकरी भी तो हरदम घूमती फिरती हैं। उनके कटने से भी कम नुकसान नहीं होगा। सवके दस्तखत होकर दरख्वास्त हेड ऑफ़िस चली गई। हेड ऑफिस से इन्सपेक्टर आये मुकर्जी साहव। इन्जीनियर-एप्रेंटिस! सव देखा-सुना। आसपास में सव स्टाफ क्वार्टर्स हैं। छोटे-छोटे

इन घरौंदों में ही तो आदमी तमाम दिन नहीं बैठा रह सकता। छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां सामने के आंगनों में खेलते हैं। मकान के कुत्ते-बिल्ली भी उधर ही घूमते फिरते हैं। सामने पानी का एक कल लगा दिया है रेलवे कम्पनी ने, वहां भी मुहल्ले के बहुत-से आदमी पानी लाने जाते हैं।

मुकर्जी साहब ने सारे दिन इन्सपेक्शन-कार में खाना-पीना किया। संध्या के समय शायद बरफ की जरूरत पड़ी थी। ह्विस्की साथ ही थी, बरफ सप्लाई किया टी-स्टाल वेंडर नरान ने। बरफ की कीमत नहीं ली नरान ने।

मुकर्जी साहब के चपरासी से उसने कहा, 'अपने साहब से कहकर जगह को घिरवा दो भाई, मेरी बरफ का दाम वसूल हो जाएगा।'

इतना सब करके भी कुछ नतीजा नहीं निकला।

थर्टी-टू डाउन उसी सोलह साल पहले की तरह तब भी रात के नौ बजे वहां आकर खड़ी होती। फिर वही खाली गाड़ी सवेरे के साढ़े पांच बजे थर्टी-थ्री अप नाम लेकर वहां से रवाना होती।

अब भी वह जगह बिना घेरे के खुली पड़ी है। किसीको उस पार जाने की जरूरत पड़ने पर वह लाइन क्रास करके जाता है। सारे दिन खाली पड़ी रहती है लाइन। लाइन पर कोई दाल की बड़ियां सुखाने के लिए रखते हैं। लाइन के पत्थरों के फासलों पर घास उग आने पर पालतू गाय-बकरी चरने जाते हैं उसे। सारे दिन वह जगह आंगन का काम देती है। सिर्फ रात के वक्त ही वहां थर्टी-टू डाउन चुपचाप खड़ी रहती है पहले की तरह।

तपन ने एक दिन दिखलाई थी वह जगह।

हंसते-हंसते कहा था, 'यही है वह जगह। इसी जगह मां का पैर कट गया था।'

बचाव की बात यही हो गयी कि एक पैर को लेकर दुर्घटना समाप्त हो गयी। नहीं तो इंजिन के पहिये छाती पर होकर भी जा सकते थे। तब इस तरह सारी जिन्दगी सोये रहकर गुजारने का कष्ट नहीं सहना पड़ता।

'सिर्फ एक पैर कैसे कटा ?'

तपन बोला, 'मां ने तो आत्महत्या के लिये लाइन पर सिर रख दिया था।'

'किसलिये आत्महत्या करने गयी थी गायत्री मौसी ?'

तपन हंसा। बोला, 'और किसलिए, पिता जी से झगड़ा करके।'

सचमुच भुवन मजुमदार से गायत्री मौसी का झगड़ा हमेशा से चलता

आया है। जिस दिन शादी हुई थी, शायद उसी दिन से ही।

'किस बात पर होता है झगड़ा ?'

तपन बचपन से देखता आ रहा है मां-बाप को। अभ्यस्त हो गया है वह इस प्रतिदिन के झगड़े का।

तपन ने कहा, 'पिताजी के सिगरेट पीने पर मां को उसकी बू नहीं सुहाती, इसी बात पर कभी-कभी खूब झगड़ा होता है, झगड़ा न करने पर मेरे माता-पिता का खाना ही नहीं हज़म होता।'

'अब भी झगड़ा होता है ?'

तपन बोला, 'हां, अब भी।'

जो लोग आस-पास के मकानों में रहते हैं वे जानते हैं यह बात। एकाएक कहीं शोर सुनते ही कहते हैं, 'लो फिर शुरू हो गया उनका…'

'शुरू होने का मतलब था लगातार दस घंटे तक चिल्ल-पों मचते रहना। पड़ोसी आजिज़ आ जाते थे।

गोविन्दराजन बाबू ने एक दिन अधिक सहन न कर पाकर तपन को बुलाकर कहा था, 'अपने मां-बाप को थोड़ा रुकने को कहो न, हमारे मासूम बच्चे सो नहीं पा रहे हैं।'

तपन कहता, 'अभी नहीं रुकेगा यह…'

'नहीं रुकेगा ?'

तपन ने कहा था, 'पिताजी खा-पीकर नाइट ड्यूटी करने जायेंगे, तब रुकेगा।'

'किस बात के लिये इतना झगड़ा होता है ?'

तपन बोला, 'यह तो नहीं जानता।'

दफ्तर में मुलाकात होने पर भी लोग भुवन मजुमदार से पूछते, 'रोज़-रोज किसलिये आप लोगों में इतना झगड़ा होता है ?'

टाइमकीपर बाबू हंसता।

कहता, 'झगड़ा करने की तबियत होने पर क्या कारण खोजने की ज़रूरत होती है साहब ? कारण अपने-आप उग आता है।'

वास्तव में सबको अचरज होता था टाइमकीपर बाबू के आचरण से। इतना झगड़ा होता था कि उस शोर से कान के पर्दे फटने को होते, लेकिन फिर भी ठीक वक्त पर दफ्तर में हाजिर होता था भुवन मजुमदार।'

'कहिये, आज खाना खाकर तो आये हैं टाइमकीपर बाबू ?'

भुवन मजुमदार तब पान चबा रहा था। बोला, 'क्यों ? खाना क्यों नहीं खाऊंगा ?'

'सवेरे ही से मर्द-औरत का झगडा चल रहा था, कब आप लोगों के यहां खाना बना, और कब खाया आपने ?'

अचरज की तो बात है ही।

कोई-कोई कहता, 'क्यों आप लोगों में इतना झगडा होता है, बताइए तो साहब ?'

भुवन मजुमदार कहता, 'क्या झगडा ही होता है सिर्फ, हम लोगों में झगड़ा भी होता है, मुहब्बत भी होती है—और बिना मुहब्बत के ही क्या हर साल बच्चे होते हैं हमारे ?'

जब मिजाज ठीक रहता तब गायत्री मौसी का रूप ही दूसरा होता। तब कहती, 'छी-छी, कैसे हो जी तुम लोग ! तुम लोगों के दफ्तर में क्या यही काम होता है, और कोई काम नहीं है तुम लोगों को ?'

भुवन मजुमदार कहता, 'तो मैं क्या करूं बताओ ? कोई ऐसा नहीं है जो तुम्हारी करतूत न जानता हो—सारे चन्द्रपुरा में शोर मच गया है। तुम्हें मरने की ऐसी क्या पड़ी थी ? तुम्हें थोड़ा भी डर नहीं लगा रेल की लाइन पर सिर रखने में ?'

सचमुच गायत्री मौसी को खुद भी अचम्भा होता था कि रेल की पटरी पर सिर रखने का साहस कैसे आ गया था उसमें !

मुझे भी बहुत कुतूहल होता था। जब गायत्री मौसी के घर जाता था तब बिछौने के पास बैठकर बातें करता था उनसे बहुत देर तक। एक ही पैर था गायत्री मौसी का। एक ही पैर से लंगड़ाते-लंगड़ाते चलती-फिरतीं। कहीं चलते हुए गिर न पड़ें, इसलिये उनका हाथ पकड़ लेता था मैं कभी-कभार।

कहता, 'मैं तुम्हें पकड़ रहा हूं मौसी, चलो !'

'धत्, छोड़ दे तू !'

कहकर दीवार के सहारे मौसी खुद ही चलतीं। मैं देखता था कि उस एक पैर से ही कितनी सहूलियत से चलने का अभ्यास हो गया है मौसीजी को। पैर एक ही था, लेकिन गले की आवाज जैसे सौ के बराबर थी। बिस्तर पर लेटे-लेटे ही झगड़ा करती थी भुवन मजुमदार के साथ।

उसी तरह लेटे-लेटे ही चिल्ला उठतीं, 'क्यों जी, तुम फिर तमाखू पी रहे हो ?'

भुवन मजुमदार तब रिटायर्ड जीवन व्यतीत कर रहा था। बीड़ी-सिगरेट खरीदने के पैसे नहीं थे। एक नारियल के हुक्के में तमाखू पीता था। उस तमाखू का धुआं नाक में जाते ही मौसी को खांसी आ जाती थी।

कहती, 'क्यों जी, तुम फिर तमाखू पी रहे हो?'

स्त्री के नाक में धुआं न जाए इसलिये भुवन मजुमदार थोड़ी दूर घर की चौखट के बाहर बैठकर तमाखू पीता था।

कहता, 'मैं आंगन में बैठकर तमाखू पी रहा हूं, यह भी सहन नहीं हो रहा है तुम्हें?'

'यह तो कहोगे ही तुम, मेरी तकलीफ को देखने की तुम्हें क्या पड़ी है!'

भुवन मजुमदार कहता, 'तो इन्सान एक ही दिन में नट् से कहीं अपने नशे की आदत को छोड़ सकता है?'

'तुम्हारे नशे की लत के सामने मेरी तकलीफ कुछ नहीं? मेरी नाक में जलन हो रही है।'

भुवन मजुमदार तब आंगन से उठ पड़ता। कहता, 'ठीक है, मैं तब बाहर मैदान में जाकर पीता हूं।'

मौसी कहती, 'लेकिन फिर भी अपनी जिद नहीं छोड़ोगे, कैसे आदमी से पाला पड़ा है, भगवान!'

भुवन मजुमदार भी तो आखिर इन्सान है। उसे भी तो गुस्सा आ सकता है। कहता था, 'सारी जिन्दगी तुमने मुझे जलाया है, अब बुढ़ापे में थोड़ा आराम से बैठकर तमाखू पिऊं, यह भी तुम्हारे मारे नहीं हो सकता।'

'तो पियो न, जितना पी सको पियो तुम तमाखू, मैं क्या तुम्हें मना कर रही हूं कि तुम तमाखू मत पियो? लेकिन मेरी नाक के पास धुआं छोड़े बिना क्या तुम्हें सुख नहीं मिलता?'

असहाय भाव से मेरी ओर देखकर भुवन मजुमदार कहता, 'देख रहे हो बेटा, देख रहे हो, मैं तुम्हारी मौसी की नाक के पास तमाखू पी रहा था—तुम तो गवाह हो, तुम्हीं बताओ तो...'

गायत्री मौसी भी चुप नहीं रहती थीं।

कहती थीं, 'चुप रहो तुम, गवाह भी अच्छा मिला है तुम्हें, चोर का गवाह छिछोर ही होता है।'

तब लड़के-लड़कियां काफी बड़े हो गये थे। तपन रेलवे में गार्ड हो गया था। लड़की पद्मरानी की शादी की बातचीत चल रही थी। जगह-जगह से

रिस्ने आ रहे थे। यह उसी वक्त की बात है। घर में दिन-रात झगड़ा होता था। भुवन मजुमदार रिटायर होकर घर में बैठकर तमाखू पीता और बीबी से झगड़ा करता। ठीक तभी खबर मिली कि भुवन मजुमदार की स्त्री के फिर बच्चा होगा।

देसाई बाबू तब तक रिटायर नहीं हुए थे।

भुवन मजुमदार को तेजी से रास्ते पर जाते देखकर देसाई बाबू ने पूछा, 'क्यों, टाइमकीपर बाबू, इतने सवेरे कहां जा रहे हैं?'

देसाई बाबू चन्द्रपुरा में रहते-रहते अच्छी बंगला सीख गये थे।

भुवन मजुमदार जल्दी में था तब। बोला, 'तिवारी के पास जा रहा हूं, थोड़ा जल्दी में हूं।'

'तिवारी? तिवारी कौन है?'

तिवारी था लेविल क्रॉसिंग का गेट-कीपर। लेविल क्रॉसिंग के पास ही थी तिवारी की खोली।

'वही जो हमारे लेविल क्रॉसिंग का गेटमैन है। उसके यहां से बकरी का दूध लाने जा रहा हूं, आज एक लड़का हुआ है भाई मेरे।'

'लड़का?'

यह खबर नई भी है और पुरानी भी। भुवन मजुमदार की पैर कटी बहू के फिर बच्चा होगा, बुढ़ापे में टाइमकीपर बाबू की स्त्री फिर गर्भवती हो गई है, यह खबर चन्द्रपुरा के रेलवे मुहल्ले में किसीको जानना बाकी नहीं था। लेकिन रात को कब उसकी बीबी ने बच्चा जना, कब दाई आई, कब नाल काटी गई, किसीको कुछ नहीं पता चला पड़ौस में।

'कब हुआ लड़का? कितने बजे?'

'ढाई बजे रात को?'

'तपन की मां तो ठीक है?'

'हां भाई, देखो न बुढ़ापे में बच्चा जनके मुझे मुसीबत में डाल दिया। थोड़ा आराम से बैठकर हुक्का तक पीने की फुरसत नहीं है। अब बकरी के दूध के लिए दौड़ना पड़ रहा है।'

उसी दिन से रोज सवेरे रेलवे लाइन पार करके भुवन मजुमदार बच्चे के लिए तिवारी के यहां से बकरी का दूध लाने जाते।

गोविन्दराजन बाबू की स्त्री गोदावरी खबर पाकर आयी।

गायत्री मौसी बोलीं, 'यह देखो भाई, तुम्हारे इस आदमी की करतूत, हा

मांस जला डाला मेरा एकदम।'

गोदावरी बोली, 'एक तो तुम्हारी यह हालत है तिसपर ऐसे वक्त…'

'तुम्हीं लोग बताओ भाई, मैं क्या दिन-रात यों ही झगड़ा करती हूं ?'

'झगड़ा ही अगर होता है दिन-रात तो फिर मेल कब होता है ?'

गायत्री मौसी बोली, 'मेल ? मेल तो नहीं होता।'

'तो बिना मेल हुए बच्चे कैसे हो जाते हैं ?'

गायत्री मौसी की दोनों आंखें छलछला आयीं। बोलीं, 'मुझे क्या शौक चर्राया था जो मैं रेल की पटरी पर सिर रखने गई थी ! तकलीफ बर्दाश्त के बाहर होने पर ही इन्सान खुदकुशी करने जाता है, भाई।'

गोदावरी बोली, 'ना दीदी, ऐसा काम और कभी न करना जिन्दगी में। इतने लड़के-लड़कियां हैं तुम्हारे, क्या एक बार भी तुम्हें इनकी याद नहीं आयी ? इनका खयाल करके भी तो तुम्हें समझदारी बरतनी चाहिए थी।'

गायत्री मौसी कहती, 'मेरी जैसी हालत अगर किसी और की होती तो उसका दिमाग खराब हो जाता, भाई, यह तो मैं हूं जो जिन्दा हूं अभी तक—उनकी, उन बच्चों की बात सोचकर बेहद डर लगा था मुझे…'

आज की बात नहीं है यह। एक अरसा हो गया है इसे। लेकिन बातचीत के दौरान घूम-फिरकर सिर्फ यही प्रसंग चला आता है। किसी दांत के गिर जाने पर जिस तरह बार-बार जीभ उसी खाली जगह जाकर गिरे हुए दांत को ढूंढ़ती है, गायत्री मौसी के साथ भी जैसे यही बात है। सब सिर्फ उसी किस्से को सुनना चाहते हैं।

पात्र बाबू डी० टी० एस० ऑफिस का हेड क्लर्क है। उसकी मास आई मुलाकात करने। इधर-उधर की बातों के बाद पैर कटने की वह बात भी आ गयी।

'क्यों इस तरह आत्मघात करने गयी थीं आप ? थोड़ा भी डर नहीं लगा आपको ?'

गायत्री मौसी बोली, 'मैं कितनी तकलीफ में हूं, इसे बाहर का कोई नहीं समझ सकता।'

'तकलीफ किसे नहीं है भई, दुनिया में जिन्दा रहना ही तो एक मुसीबत है ! लेकिन तो भी हम चुपचाप सब कुछ सहते हुए जी रहे हैं। नहीं तो क्या हम लोगों की तबियत नहीं करती मरने को ? कभी-कभी तबियत होती जरूर है, फिर बाल-बच्चों का मुंह जोहकर भूल भी जाना पड़ता है सब

दु:ख…'

इसके बाद थोडा रुककर पूछा, 'किस जगह से कटा है, देखू।'

सब सुन रखा था पात्र बाबू की सास ने पहले से। तो भी चाक्षुष प्रत्यक्ष की इच्छा हुई।

गायत्री ने पैर से साडी को बिलकुल हटाकर दिखाया। बोली, 'यह देखिए।'

पात्र बाबू की सास पैर के कटे स्थान को नीचे झुककर तेज निगाह डालकर अच्छी तरह देखने लगी। असल मे इसे देखने ही आई थी वह। पन्द्रह-सोलह साल पहले का कटा है। पहले वह पैर सुगोल-सुडौल था। भुवन मजुमदार से जब शादी हुई थी तब बहुत दिन तक उसके पैरों की प्रशंसा करता रहा था वह। उसके बाद बाल-बच्चे जन-जनकर और कोई आकर्षण बाकी नही रहा उसमे। उमर बढने के साथ-साथ चमडी ढीली पड गयी है अब, सिकुडन आ गयी है और दाग पड गए हैं उसपर। दुर्घटना के बाद पहले छह महीने तक तो उसे बिस्तर पर लेटे ही रहना पड़ा था। बेड-पैन इस्तेमाल करना पडता था। अस्पताल की नर्स ने भी पूछा था, 'आपने हिम्मत कैसे की इस काम को करने की ?'

बच्चे, बूढे, अड़ौसी-पड़ौसी सबने यही एक सवाल हजार बार पूछा है।

पात्र बाबू की सास ने भी वही सवाल पूछा।

गायत्री मौसी ने कटे हुए पैर को दिखलाकर कहा, 'यह देखिए, एकदम यही पर होकर पहिया चला गया था।'

'भगवान ने ही बचा दिया है आपको, नही तो ऐसी हालत मे कोई बचता है ! तो आप शायद चिल्ला उठी होंगी ?'

गायत्री मौसी बोली, 'पहले तो मरूगी यह तय करके पटरी पर सिर रख दिया था—लेकिन जैसे ही इंजिन ने चलना शुरू किया, वैसे ही चीखकर खडी हो गई मैं। बाल-बच्चों की याद आ गयी थी न …'

पात्र बाबू की सास दरअसल यही किस्सा सुनने आयी थी।

उसने पूछा, 'इसके बाद ?'

गायत्री मौसी ने कहा, 'सॉं-सॉं आवाज निकल रही थी इंजिन से तब, ड्राइवर मेरी चीख सुनता कैसे ? मैं तब तक छिटककर लाइन से बाहर चली आयी थी…'

'गजब ! फिर ? फिर क्या हुआ ?'

'फिर मेरे इस पैर पर होकर इंजिन का एक पहिया चला गया।'

'बहुत लगा होगा ? खून निकला होगा ?' सवाल पूछकर पात्र बाबू की सास ने फिर खुद ही कहा, 'ओह्, लगेगा क्यों नहीं ! हमीं लोगों की हंसिया से जब थोड़ी उंगली कट जाती है तब कितनी तकलीफ होती है। आपका तो पूरा एक पैर ही कट गया—भला तकलीफ नहीं होगी !'

'मैं तो तभी बेहोश हो गयी थी, कुछ नहीं महसूस हुआ मुझे। सात दिन बाद होश आया मुझे। होश आने पर मैंने देखा कि वे सिरहाने बैठे हैं और मेरा लड़का तपन पास बैठा है।'

सबको सुनाया जा चुका है यह किस्सा। चन्द्रपुरा में जब कोई नया आदमी आता है वह कभी न कभी यहां आकर यह किस्सा जरूर सुन जाता है। पुरुष लोग सुनते हैं भुवन मजुमदार से, और स्त्रियां सुनती हैं गायत्री मौसी से।

किस्सा कहते समय अगर छोटे बच्चे करीब होते हैं, भुवन मजुमदार कहता है—'ए, तुम लोग बूढ़ों के पास बैठे-बैठे क्या बेकार की बातें सुन रहे हो ? जाओ, तुम लोग बाहर चले जाओ। बाहर इतना बड़ा मैदान पड़ा है, जाओ खेलो न वहां।' कहकर छोटे बच्चों को भगा देता है।

लेकिन मेरी बात अलहदा है। गायत्री मौसी के बड़े लड़के से दोस्ती होने के बाद मैं उनके घर का आदमी जैसा बन गया था एकदम। बिलकुल अंतरंग। तपन को गार्ड की ड्यूटी करने काफी दूर-दूर के मुकामों पर जाना पड़ जाता। और मेरी थी आठ घंटे की ड्यूटी। आठ घंटे की ड्यूटी के बाद मैं क्या करता ? मैं तपन के घर जाकर बैठता। लड़कियां एनामेल के कप में चाय लाकर देतीं, मैं उस चाय की चुस्की लगाते हुए बैठे-बैठे गपशप किया करता गायत्री मौसी से।

किन्तु मानव-चरित्र और उस मानव-चरित्र का विश्लेषण, हैं दोनों ही आश्चर्यजनक !

चन्द्रपुरा की रेलवे कॉलोनी में ही क्या कम परिवर्तन हुआ है इन कई सालों में। स्टेशन के प्लेटफार्म बढ़ाए गये, यार्ड बड़ा हुआ। पहले यार्ड में पन्द्रह जोड़े थे लाइनों के, फिर वहां और तीन जोड़ी पटरियां बिछायी गयीं। लेकिन वहां के आदमी नहीं तबदील हुए। पूंटी पहले जिस तरह घर-घर जा-जाकर खबर फैलाया करती थी, तब भी वैसा ही करती थी।

तब पूंटी विधवा हो चुकी थी। भाई भोला नंदी के परिवार में रहकर बहुओं से झगड़ा करती, रसोई वगैरह के काम में हाथ बंटाती, पर मुहल्ले में गश्त लगाने की अपनी पुरानी आदत को नहीं छोड़ पायी थी।

देसाई बाबू के घर जाकर कहती, 'क्यों भाभी, क्या कर रही हो ? अरे, अभी कपड़े नहीं बदले तुमने ?'

इसके बाद आवाज को नीचा करके कहती, 'जानती हो भाभी, टाइम-कीपर बाबू की बीवी की करतूत ?'

'फिर क्या हुआ री ?'

'फिर टाइमकीपर बाबू से झगड़ा किया है।'

'क्यों ?'

'यह तो पता नहीं, बहुत चिल्लाहट की आवाज आ रही थी हमारे घर। कुछ नहीं सुना तुमने ?'

'नहीं तो !'

'अरे, क्या कह रही हो ! हम लोगों के तो कान के पर्दे फटे जा रहे थे, इतनी चीख-पुकार मची हुई थी। आखिर मैं उनके घर गयी मैं। जाकर पूछा कि क्या हुआ है भाभी ? क्यों इतना झगड़ा कर रही हो ? इसपर भाभी बोली कि झगड़ा क्यों न करूं ? मेरा एक पैर चला गया, इससे भी तुम्हारे दादा की साध नहीं पूरी हुई, मार ही डालना चाहते हैं अब मुझे। कहते हैं कि फिर जाकर रेल की पटरी पर सिर रख दो और मरकर मेरा पिंड छोड़ दो।'

सचमुच भुवन मजुमदार उस दिन बहुत ज्यादा उत्तेजित हो गया था।

आखिर कितने दिन बरदाश्त कर सकता है इन्सान ! हरएक के बरदाश्त की एक हद होती है। भुवन मजुमदार अपने रिटायर्ड जीवन में निश्चिन्तता-पूर्वक घर बैठकर हुक्का नहीं पी सकता, क्योंकि गायत्री मौसी को तमाखू की बू पसंद नहीं। भुवन मजुमदार अपने घर में बैठकर बातचीत भी नहीं कर सकता—इससे गायत्री मौसी के आराम में खलल पड़ता है। भुवन मजुमदार घर से बाहर जाकर भी कहीं अधिक समय तक नहीं रह सकता—इससे गायत्री मौसी की अवज्ञा होती है। तब वह बेचारा क्या करे ?

लिहाजा झगड़ा करने के सिवाय और कुछ नहीं रहता करने को।

अन्त में जब झगड़ा करते-करते मिजाज बिगड़ जाता है, तब मारे गुस्से के चिल्ला उठता है भुवन मजुमदार।

कहता है : 'तब तुम्हारे लिए क्या मैं अपनी जान दे दूं, बोलो ?'

गायत्री मौसी कहती है, 'तुम क्यों जान दोगे, सुनूं ? जिसे जान देनी है वह तुम्हारे सामने मौजूद है !'

भुवन मजुमदार ने कहा, 'तुम क्यों जान देने जाओगी, मैं ही दे दूंगा

जान…'

'तुम क्यों जान दोगे ? तुम्हें क्या तकलीफ है ?'

'तो तुम्हें ही क्या तकलीफ है ?'

'मेरी तकलीफ अगर तुम समझते तब मुझे फिक्र ही क्या होती ?'

'जिन्दगी-भर मुझे तंग करके भी तुम्हारी हविश पूरी नहीं हुई ?'

'भगवान बैठे हैं ऊपर, इतना झूठ मत बोलो। ज्यादा झूठ बोलने पर तुम्हारी जीभ गल जायगी, कहे देती हूं।'

'तो मैं झूठ बोल रहा हूं या तुम झूठ बोल रही हो ?'

गायत्री मौसी बोलीं, 'मुझे डर किस बात का है ? किसका डर है कि मैं झूठ बोलूंगी ? मैं क्या तुमसे डरती हूं ? मैंने क्या कोई गलती की है जो मैं किसीसे डर जाऊं ?'

'तो सारी गलती क्या है मेरी ही है ?'

'तुम्हारी गलती नहीं है तो क्या मेरी गलती है ? पांच जनों से पूछ देखो किसके लिए मेरा पैर कटा है ? किसके लिए मैं रेल के पहियों के नीचे सिर रखने गयी थी ?'

'तो तुम फिर जाओ न रेल के पहियों के नीचे सिर रखने। पहली बार एक पैर गया था, अबकी बार सिर ही चला जाय, तुम्हारी बातें और नहीं सुननी पड़ेंगी मुझे तब ! कौन रोक रहा है तुम्हें ?'

इसके बाद और चुप लेटी नहीं रह सकी गायत्री मौसी। धड़ से चादर फेंककर उठ पड़ी। साड़ी को ठीक करके बिस्तर से नीचे उतरी। बोली, 'ठीक है, जा रही हूं मैं। मेरे मरने से ही अगर तुम्हें चैन मिल जाय तो मैं जा रही हूं, मैं ही अगर तुम सबकी आंख की किरकिरी होऊं तो दूर हुई जाती हूं।' कहकर सचमुच ही गायत्री मौसी उठी। फिर लंगड़ाते-लंगड़ाते दरवाजे की ओर बढ़ी।

भुवन मजुमदार बोला, 'कहां जा रही हो ?'

गायत्री मौसी बिना कुछ जवाब दिये दरवाजे से बाहर निकलने को हुई।

भुवन मजुमदार जल्दी से हुक्का रखकर पकड़ने गया गायत्री मौसी को। पूछा, 'कहां जा रही हो तुम ?'

'मैं जहां भी जाऊं, तुमसे मतलब ?'

भुवन मजुमदार ने फौरन गायत्री मौसी का हाथ पकड़ लिया।

'छोड़ो, मेरा हाथ छोड़ो।'

'तुम कहा जा रही हो, बताओ न ?'

'मैं जहा भी जाऊ, तुम्हे उससे क्या मतलब ?'

'मुझे उससे मतलब नहीं, क्या कह रही हो तुम ? तुम्हे अगर कुछ हो गया तब लोग तो मुझे ही दोष देंगे।'

'तुम्हे कोई नही दोष देगा, तुम्हे कोई नही दोष देगा। तुम तो दूध के धोये हो, सब दोष मेरा है। सारी हत्या की जड तो मैं ही हू। मैं ही हू पाजी औरत, मुझीमें है सब ऐब!'

'छी, पागल मत बनो। बात मानो, चलो चुपचाप लेटी रहो। आओ।'

'मुझे छोड़ दो तुम!'

भुवन मजुमदार ने तब कसकर पकड़ लिया था गायत्री मौसी को।

'छोडो, मुझे छोडो। मैं फिर रेल के पहियों के नीचे गिर रहूंगी। मुझे इस बार कोई नही रोक सकेगा, इस बार कोई नहीं बचा सकेगा। जो मुझे बचाने आयेगा वह हरामजादा है! उसे नरक मे भी जगह नही मिलेगी, यह मैं कहे देती हू।'

एकाएक शोरगुल सुनकर मुहल्ले के सभी लोग चले आये। गोविन्दराजन बाबू की स्त्री गोदावरी आई। भोला नन्दी की विधवा बहन पूटी आई। कट्रोल क्लर्क देसाई बाबू की स्त्री भी चली आई। गार्ड की ड्यूटी करके ऐन तभी लौटा था बड़ा लड़का तपन। घर, के सामने लोगों की भीड देखकर उसे भी ताज्जुब हुआ। बड़ी लड़की पद्म की शादी हो गयी थी, वह ससुराल चक्रधरपुर चली गयी थी तभी, नहीं तो वह भी रोक सकती थी अपनी मा को। और बाकी जो छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां थे, वे यह दृश्य जन्म से देखते आ रहे थे: घर के भीतर इतने लोगों को आते देखकर अपना खेल बद करके मुह बाये सामने होते तमाशे का लुत्फ उठाने लगे।

ऐसी घटना गायत्री मौसी के जीवन मे यही नहीं थी अकेली। बहुत बार पति-पत्नी मे मामूली-मामूली बात पर झगड़ा हुआ है। बहुत बार ऐसा हुआ है, बहुत बार इसी तरह आत्महत्या करने गयी है गायत्री मौसी। लेकिन हर बार ही बाधा मिली है।

जिस दिन भुवन मजुमदार की साठ साल की उमर मे अकस्मात् स्ट्रोक से मृत्यु हुई, उस दिन भी वैसा ही हुआ।

इस आकस्मिक घटना से स्तंभित हो गये सब। उधर गायत्री मौसी ने चीखकर सारा चन्द्रपुरा अपने सिर पर उठा लिया।

'हाय राम, मैंने कौन-सा पाप किया था कि तुम मुझे इस तरह मार गये ? मैंने क्या बिगाड़ा था तुम्हारा…'

उसका वह रोना-चिल्लाना रुकने का नाम नहीं लेता था।

एक दिन गायत्री मौसी ही खुद मरकर अपने पति को सबक सिखाना चाहती थी। और पिछले इन सोलह बरसों से गायत्री मौसी ही सबके लिए बोझ बनकर जिन्दा है। पति चला गया, यह भी देखना पड़ा उसे अपनी आंखों से। कोई भी गायत्री मौसी को दिलासा देने नहीं आया। सिर्फ उसका यह ढाड़ें मारकर रोना दिखावटी है या असली, जैसे इसीका जायजा लेने आये थे लोग।

जबान से सबने कहा, 'क्या करोगी दीदी, होनी को कौन मेट सकता है।'

गायत्री मौसी रोती हुई बोली, 'मैं कब जाऊंगी, तुम लोग बता दो भाई मुझे…'

'यह कौन बता सकता है, दीदी ? तुमने तो सबसे पहले जाने की कोशिश की थी, क्या जा सकीं ?'

गायत्री मौसी ने कहा, मैं तभी क्यों नहीं चली गयी, क्यों तब डरकर पीछे लौट आयी, नहीं तो क्या मुझे आज यह दिन देखना पड़ता ?'

'होनहार को क्या टाल सकता है कोई ? यदि मनुष्य यही कर सकता तो वह देवता बन जाता। संसार में तब दुःख-दर्द बाकी नहीं रहता।'

गायत्री मौसी कहने लगी, 'उस आदमी को मैंने जितनी तकलीफ दी है उसका हिसाब नहीं। जिन्दगी भर जलाया था, अब किसे जलाऊंगी ? अब किसके साथ झगड़ा करूंगी ? कौन है मेरा ? कौन मेरे झगड़े की बकत करेगा ?' कहकर फूट-फूटकर रोने लगी गायत्री मौसी।

जिन्होंने गायत्री मौसी को अक्सर झगड़ा करते देखा था, उस दिन उन्होंने ही फिर गायत्री मौसी को बिलखकर रोते भी देखा।

देसाई बाबू की स्त्री बोली, 'पति के मरने पर स्त्री रोयेगी नहीं तो क्या हंसेगी ?'

पूंटी ने कहा, 'तो टाइमकीपर बाबू को उसने कितना जलाया था, यह क्या नहीं देखा है किसीने ?'

गोदावरी बोली, 'लेकिन पहले ऐसी नहीं थी गायत्री भाभी, पहले इस तरह झगड़ा नहीं किया करती थी टाइमकीपर बाबू के साथ।'

पूंटी ने कहा, 'तुम ख़ाक जानती हो, भाभी। हमेशा की झगड़ालू है गायत्री भाभी, मैं बचपन से वैसा ही देखती आ रही हूं उसे, झगड़े के शोर से उनकी

छत पर चील-कौआ तक नहीं बैठ पाते थे।'

पर मैं इन सब बातों को सुनकर और इन घटनाओं को देखकर भी गायत्री मौसी के बारे में स्थिर निर्णय नहीं कर पाया। मुझे लगता था कि जैसे हम सब उनके बारे में किसी गलतफहमी के शिकार हो रहे हैं। इस गलती को बाहर से कोई पकड नहीं पा रहा है, रास्ता भी नहीं है पकड़ने का।

तपन से पूछा था। तपन मौसी का ऐसा लडका था कि इन बातों से मतलब ही नहीं रखता था कोई। वह सिर्फ नौकरी करना जानता था और हो-हल्ला करते हुए घूमता। पूजा के समय ड्रामा में मशगूल रहता। और जब वक्त मिलता तब वह बिस्तर पर पड़के खर्राटे भरता।

पूछने पर कहता, 'हरेक आदमी एक खास तरह का स्वभाव लेकर पैदा होता है, क्या होगा मेरे कहने से ? कोई मानेगा मेरा कहना ?'

मैं खुद जाकर गायत्री मौसी को कहता था, 'आप सब तरफ नजर क्यों डालती हैं ? क्या जरूरत है आपको -'

गायत्री मौसी कहती, 'मुझे तकलीफ होती है देखकर, तभी कहती हूं। मुझे क्या शौक है चिल्लाने का ?'

'आंखें बंद किये रहिए न आप।'

गायत्री मौसी कहती, 'आखें बंद किए रख सकती तो अच्छा ही होता बेटा, तब तो और झंझट ही नहीं रहता—लेकिन मैं आखों के सामने फिजूल-खर्ची-बरबादी नहीं देख सकती।'

भुवन मजुमदार जितने दिन जिन्दा था, उतने दिन वही व्यक्ति प्रधान लक्ष्य था गायत्री मौसी का। भुवन मजुमदार की भूल-त्रुटि-अवहेलना-स्खलन ही उसके दिन-रात के अभियोग के विषय थे। भुवन मजुमदार से झगड़ा करके ही किसी तरह दिन काट देती थी। पर भुवन मजुमदार की मृत्यु के बाद भी गायत्री मौसी अपने झगड़े की वृत्ति को उसी तरह चलाती रहेगी इसकी कल्पना कोई नहीं कर पाया था।

गायत्री मौसी तपन की बहू को दिखाकर कहती, 'ऐसी बहू पर लायी हूं बेटा, जो मुझे थोड़ा शान्ति से रहने तक नहीं देती घर में।'

तपन की शादी एक रेलवे के आदमी की लड़की से ही हुई थी। रेलवे की नौकरी किसे कहते हैं उसे वह अच्छी तरह जानती है। रेलवे क्वार्टर किस चिड़िया का नाम है उसे भी वह बखूबी पहचानती है। टाइमकीपर बाबू भी उसने बहुत-देखे हैं। लेकिन टाइमकीपर बाबू की स्त्री जैसी स्त्री कभी नहीं

देखी। ऐसी सास की भी कभी कल्पना नहीं कर पायी थी वह।

पहले उसने चुपचाप ही सब कुछ बरदास्त करना चाहा था। सोचा था, सास हमेशा तो ज़िन्दा रहती नहीं है किसीकी, लिहाजा चुपचाप बरदाश्त ही करती रहूं।

लेकिन ससुर की मृत्यु के बाद गायत्री मौसी का सारा रोष जाकर केन्द्रित हो गया पुत्रवधू पर।

गायत्री मौसी विस्तर पर लेटे-लेटे ही पुकारतीं, 'वहू, सरसों का तेल गरम कर दो तो।'

तपन की वहू तब शायद रसोई करने बैठी थी। तपन अभी फौरन टिफिन-कैरियर में खाना भरके ड्यूटी करने जायगा। योंही तब उसे देर हो चुकी थी।

गायत्री मौसी फिर चिल्लाने लगीं वहीं से। बोलीं, 'ओ वहू, तेल गरम करने में क्या एक जुग लगता है ?'

तपन का खाना टिफिन-कैरियर में भरकर वहू तेल गरम करके ले आयी, तब एक टांग की लात चलाकर गायत्री मौसी ने तेल की कटोरी को फेंक दिया। फर्श, विस्तर, चटाई, असबाब सब तेल से चिकना हो गया। बोली, 'बहुत हो गया, और ज़रूरत नहीं है तेल की। बहुत सुख पा लिया मैंने। अपने सुख की परवाह ही करो तुम लोग, मेरे सुख की फिक्र करने की ज़रूरत नहीं।' कहकर गायत्री मौसी ढाड़ें मारकर रोने लगीं।

●

प्रत्येक चरित्र की एक परिणति होती है। कोई चरित्र किसी नाटकीय मुहूर्त में अपनी परिणति का मार्ग ढूंढ़कर पूर्ण रूप से अपनी अभिव्यक्ति करता है। ग्राफ की तरह एक नीचे के विन्दु से हिलोरा लेते हुए उठकर ऊपर के एक शीर्ष विन्दु पर पहुंचकर समाप्त हो जाता है।

और इसका उलटा भी देखा है मैंने।

पहले ही एक नाटकीय चरम सीमा की सृष्टि करके लगातार एक-एक करके नीचे की ओर उतरता रहता है। इसके बाद न कोई उतार-चढ़ाव रहता है, और न कोई घात-प्रतिघात।

गायत्री मौसी के अंतिम जीवन में भी ठीक यही घटित हुआ।

वही छोटा घर, वही छोटी रेलवे कॉलोनी, वही छोटी परिधि का जीवन। बचपन से ही पराये घर में पालन-पोषण हुआ। तनिक भी स्नेह, प्यार, माया-ममता के आस्वादन का अवसर नहीं मिला उसे चाचा-चाची की गिरस्ती में।

बड़े अरमान लेकर आयी थी चन्द्रपुरा में वह टाइमकीपर भुवन मजुमदार की बीवी बनकर। जिस भुवन मजुमदार की तरक्की नहीं हुई, जिसकी तनख्वाह नहीं बढ़ी, जिसके जीवन में नाममात्र को भी आशा-आकांक्षा नहीं थी, जो अपनी नौकरी को ही एक सधवा स्त्री की माग के सिंदूर की तरह प्राणपण से जकड़कर जिंदा रहना चाहता था, उसी व्यक्ति के घर आकर गृहिणी बनकर हर साल सिर्फ बच्चों को जन्म देती रही है। जन्म देना न चाहने पर भी मजबूर होना पड़ा है जन्म देने को। उसकी इस यातना को समझने वाला कोई नहीं था शायद चंद्रपुरा में। अगर होता तो वह गायत्री मौसी को समझता। गायत्री मौसी को समझकर कम से कम थोड़ी हमदर्दी तो दिखाता, गायत्री मौसी के लिए आंसू बहाता।

अन्त में सचमुच ही गायत्री मौसी की दुर्दशा चरमसीमा पर पहुंच गयी थी।

इसी बहू ने गायत्री के साथ जो दुर्व्यवहार किया है, उसे चन्द्रपुरा के सब लोगों ने देखा है। सब गवाह हैं उस घटना के।

पिछले जमाने में न जाने कितने नाटक हो गए है इस चन्द्रपुरा में, इस चन्द्रपुरा के हर क्वार्टर में। पर किसीने लिपिबद्ध नहीं किया है उसका इतिहास। अगर कोई करता तो शायद चन्द्रपुरा का रेलवे यार्ड ही मुखर हो उठता। भोला नन्दी की बहन पूटी, कंट्रोल क्लर्क देसाई बाबू, देसाई बाबू की स्त्री, डी० टी० एस० ऑफिस के हेड क्लर्क पात्र बाबू, पात्र बाबू की सास, गोविन्दराजन बाबू, गोविन्दराजन बाबू की स्त्री गोदावरी, सब बोल उठते।

लेकिन इस जगह इतनी बातें नहीं कहना चाहता। उसके लिए और विस्तृत परिपट चाहिए। और अधिक समय। यहां सिर्फ मैं गायत्री मौसी की ही बात कहने बैठा हूं। टाइमकीपर भुवन मजुमदार की स्त्री गायत्री मौसी। गायत्री मौसी को चैन नहीं मिला जिन्दगी-भर। उसकी इस करुण कहानी को सुनाने जाकर और भी बहुत-से लोगों की बातें शुरू कर दी हैं मैंने। लेकिन और नहीं, अब इस कहानी के अंतिम पर्याय पर आता हूं।

पूरी तरह नहीं जानता मैं इस अंतिम पर्याय को। सब कुछ देख पाने के पहले ही एकाएक एक दिन मेरा तबादला हो गया चन्द्रपुरा से। तबादले पर जाने से पहले मैंने जो कुछ देखा वह भी बड़ा मर्मांतक था।

तपन की उस बहू की बात कह रहा था।

शुरू-शुरू में तपन की बहू भी बहुत बरदाश्त करती थी। बहुत

सादी थी वेचारी। दंगल-भर देवर-ननदों की ज़िम्मेवारी के साथ सव ज़ुल्म और गाली-गलौज चुपचाप हज़म करती आई है एक लंवे अरसे तक। लेकिन एक इन्सान और कितना वरदाश्त कर सकता है ?

आखिरकार यह वहू भी मुंहफट हो गयी।

जली-कटी सुनाने लगी।

इस वहू ने भी एक दिन कहा, 'एक वार आत्महत्या करने गयी थीं आप, एक वार और जाइये न, हम लोगों को राहत मिल जाय तव।'

चिल्ला उठी गायत्री मौसी।

वोली, 'एँ ! छोटे मुंह वड़ी वात कहती हो, इतनी हिम्मत !'

तपन की वहू ने कहा, 'उमर वढ़ रही है, क्या मुंह अव भी छोटा रहेगा ?'

गायत्री मौसी वोलीं, 'आने दो आज तपन को, तुम्हारी सारी मस्ती झड़वाती हूं। मुझसे ज़वानदराज़ी करती हो तुम इस तरह ?'

तपन की वहू वोली, 'आप क्या करेंगी मेरा ? मुझे पिटवायेंगी क्या ?'

गायत्री मौसी ने कहा, 'अपने लड़के से शादी कराकर तुम्हें घर लाई हूं मैं, और तुम्हींने मुझसे इतनी वड़ी वात कह दी ?'

'मुझे क्या अव भी आप वही नई-नवेली दुलहिन समझती हैं ?'

'देखो वहू, ज़वान संभालकर वात करो, कहे देती हूं।'

'क्यों, हमेशा आपके पति ने आपके ज़ुल्म सहे हैं, इसलिये क्या समझती हैं मैं भी सहूंगी ?'

गायत्री मौसी इसके वाद अपने पर काबू नहीं रख पायी।

उस एक पैर से ही विस्तर छोड़कर उठने की कोशिश करते-करते चिल्लाने लगीं, 'तुम निकल ज़ाओ, निकल जाओ कहती हूं, अभी निकल जाओ मेरे मकान से…'

तपन की वहू भी जवाव में उसी तरह चिल्ला उठी, 'मैं क्यों निकल जाऊं ? यह मेरा क्वार्टर है। अपने क्वार्टर से निकलने की मुझे क्या पड़ी है ? आप ही निकल जाइए, आप ही निकल जाइए इस घर से। अगर आप नहीं निकलतीं तो मैं ही आपको वाहर निकाल दूंगी अपने घर से।' यह कहकर सहसा उसने अपने देवर-ननदों को पुकारा, 'ओ नन्ही, इधर आ तो, पकड़ो तो सव मिलकर इस वुढ़िया को, चलो वाहर निकाल दें…'

आखिरकार सचमुच सव मिलकर गायत्री मौसी को ज़वरदस्ती घर से वाहर निकाल देने को उद्यत हुए।

मुहल्ले के सब लोग चले आये थे हल्लागुल्ला सुनकर।

'अरे, क्या कर रहे हो तुम लोग ? यह क्या कर रहे हो ?'

भोला नन्दी की विधवा बहन पूटी भी आई थी तमाशा देखने। चूंकि अकेले तमाशा देखने में मजा नहीं आता इसलिए पूटी दौड़कर जाके कंट्रोल-क्लर्क देसाई बाबू की स्त्री को बुला लाई। इसके बाद गोदावरी भाभी को भी बुलाकर दिखाने लगी। डी० टी० एस० ऑफिस के हेड क्लर्क पात्र बाबू की सास भी खबर पाकर दौड़ी चली आयी। इधर कुछ दिन से वह गठिया के दर्द से हिलडुल तक नहीं पा रही थी। 'मैया रे,' 'दैया रे' करके गिरस्ती के सब लोगों के नाकों में दम कर रखा था। लेकिन एक बहुत मजेदार खबर पाकर जैसे उसका सारा दर्द हवा हो गया।

तपन की बहू तब तक एकदम मरखन्नी हो गयी थी। कह रही थी, 'मुझसे कहती है कि मैं घर से निकल जाऊं ! आप लोग पांच जनी मौजूद हैं, आप ही कहिये कि यह मेरा घर है या इनका। रेलवे कंपनी ने यह क्वार्टर हम लोगों को दिया है या इन्हें ?'

पात्र बाबू की सास ने कहा, 'कुछ भी हो बहू, हैं तो वे तुम्हारी सास ही, उस सास से कहीं इतना दुर्व्यवहार किया जाता है ?'

गोदावरी बोली, 'रहने दो बहूरानी, बूढ़ी हो गयी हैं, बुढ़ापे में थोड़ा आदमी ऐसा हो ही जाता है। एक दिन तुम भी बूढ़ी होओगी, तब समझोगी बुढ़ापे की मुसीबत।'

तपन की बहू की तब शर्म-हया सब दूर हो चुकी थी। बोली, 'अब तो मान लिया बूढ़ी हो गयी है, लेकिन हमेशा तो वे बूढ़ी नहीं थीं, तब क्यों सताया करती थीं मेरे ससुर को ? मेरे ससुर जल-जलकर मरे हैं। उन्हें तो मरकर नजात मिल गयी इनके हाथों से, अब मुझे जलाकर, मारके खुद बचना चाहती हैं।'

'खैर, तुम छोड़ दो, बहू। छोड़ दो इन्हें, देख नहीं रही हो आज एकादशी का दिन है, एक दाना नहीं पड़ा है बेचारी के पेट में।'

ऐसी हालत में जो कहना चाहिए था वही कहा मुहल्ले वालों ने। तपन की बहू भी, जो उसे कहना था, कहने लगी। तपन के भाई-बहन भी भाभी की ओर थे। उन्हें भी मजा मिल रहा था। अपनी-अपनी राय पेश कर रहे थे। बचपन से अपनी मां को उन्होंने सिर्फ लेटे-लेटे पिता से झगड़ा करते देखा है। मां के विषय में शुरू से ही उनकी धारणा अश्रद्धा और असम्मान की रही है, वे

मां की आत्महत्या की व्यर्थ चेष्टा की बात सुनते आये हैं। उनमें से हर एक जानता है कि कैसे मां आत्महत्या करने जाकर भी आत्महत्या नहीं कर सकी। उनकी दृष्टि में उनकी मां केवल व्यर्थता का प्रतीक बन कर ही जिन्दा है। भाभी के आने के बाद से ही शायद उन्हें पहली बार एक सच्ची मां मिली। इसलिए वे प्रारम्भ से ही अपनी भाभी की ओर है। आज की इतनी अशोभनीय घटना में भी तभी उन्हें मज़ा के अलावा और कुछ दिखलाई नहीं दिया।

और गायत्री मौसी ?

गायत्री मौसी की मर्मांतक व्यथा की ओर शायद किसीकी दृष्टि नहीं गयी उस दिन। यदि क्षमता रहती तो शायद उस दिन भी गायत्री मौसी चालीस साल पहले जैसी मनोवृत्ति लिये थर्टी-थ्री अप के सामने जाकर रेल की पटरी पर लेट जाती। एक दिन जो करने जाकर डरकर भाग आयी थी एक पैर खोकर, उस दिन शायद फिर उसकी पुनरावृत्ति करती चरम अपमान की परिणति के रूप में। लेकिन तब न वह उमर थी, न खून में वह गर्मी। तब तो स्त्री का एकमात्र सहारा वह पति टाइमकीपर भुवन मजुमदार भी नहीं था, जिसके ज़िन्दा रहने पर कम से कम इस बेइज़्ज़ती से बच जाती गायत्री मौसी।

उस दिन तपन के क्वार्टर के सामने उस हालत में खुले आसमान के नीचे गायत्री मौसी के उस निग्रह को देखकर मेरी आंखों में आंसू आ गये थे।

लेकिन अचरज के साथ गौर कर रहा था कि गायत्री मौसी की आंखें बिलकुल सूखी हैं। विमूढ़ भाव से केवल देख रही हैं सबकी ओर। जैसे अपनी दशा की उपलब्धि स्वयं ही करना चाह रही हों। जैसे समझ रही हैं गायत्री मौसी कि उनका और कोई नहीं हैं। न पति, न बेटा, न बेटी, न पतोहू। कोई नहीं। बिलकुल अकेली हैं। इस अकेलेपन में वह पहली बार अनुभव कर रही हैं कि उनके अभियोग, अभिमान और तिरस्कार का लक्ष्य जो व्यक्ति था वह अब नहीं है।

हो सकता है आखिर तक उनकी कुछ और दुर्गति होती उस दिन। लेकिन एकाएक उसी वक्त तपन के ड्यूटी खतम करके लौट आते ही सारे नाटक पर यवनिका पड़ गयी।

टप्-टप् आंसू गिरने लगे गायत्री मौसी की आंखों से एकाएक।

रोते-रोते कहने लगीं गायत्री मौसी, 'अरे बेटा तपन, देख तेरी बहू ने

मेरा क्या हाल किया है, अरे देख तू, देख...'

और तपन भी गायत्री मौसी का वैसा ही बेटा है। वह भी बचपन से अपने माता-पिता को देखता आ रहा है। देखते-देखते उसकी नजरों में सब दृश्य पुराने हो चुके हैं। बोला, 'चलो, चलो, भीतर चलो, मैं पकड़ रहा हूं तुम्हें।'

गायत्री मौसी को पकड़कर भीतर ले गया वह। गायत्री मौसी भी बेटे का हाथ पकड़े लंगडाते-लंगडाते सारे तमाशे का अन्त करके अन्दर चली गयीं।

वास्तव में जैसे तपन में राग-विराग नाम की कोई वस्तु नहीं थी। उसने इस घटना को भी जैसे सहज-स्वाभाविक मानकर ही ग्रहण कर लिया था।

तपन ने कहा था, 'धत्, यह सब तो हमारी गिरस्ती में हमेशा से होता आया है, होता रहेगा भी। इन बातों पर सिर खपाने से कहीं काम चलता है?'

तपन जैसे इन लड़ाई-झगड़े की घटनाओं को अधिकार के बाहर की वस्तु समझकर निश्चिन्ततापूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा था और केवल अपने अस्तित्व को बनाये रखने को ही परम सार्थकता मानने लगा था।

इसके बाद मैं और अधिक दिन चन्द्रपुरा में नहीं रह सका। चन्द्रपुरा के सारे नाटक से विच्छिन्न होकर चक्रधरपुर चला गया था।

जिस तरह इतिहास की शिक्षा है, व्यक्ति के चरित्र से भी उसी प्रकार की एक शिक्षा मिलती है। संसार में लोग विभिन्न घटनाओं की व्याख्या विभिन्न प्रकार से करते हैं। भले-बुरे का विचार करते हैं, दोषगुण का निर्णय करते हैं। ऐसे लोगों की दृष्टि में गायत्री मौसी में जो भी दोष हो, पर मैं प्रारम्भ से ही उसे उनके प्रति अन्याय मानता आया हूं। गायत्री मौसी को भी जीवन में सुख पाने का अधिकार था, हक था। लेकिन वह अधिकार उन्हें क्यों नहीं दिया किसीने? इसके लिए कौन उत्तरदायी है?

बहुत दिन बाद जब कुछ दिन के लिए एक बार फिर चन्द्रपुरा से गया था, तब तपन से मुलाकात हुई थी।

तब भी वह उसी गार्ड की नौकरी पर ही था। थोड़ी उमर बढ़ गई थी उसकी। बाल पकना शुरू हो गये थे।

लेकिन चेहरा पहले ही की तरह हंसमुख था।

उसने पूछा, 'खाना कहां खाया तुमने?'

बोला, 'पात्र बाबू के यहां, जबरदस्ती खिला दिया।'

'रात को कहां खाओगे?'

'खा लूंगा कहीं।'

पीछे पड़ गया तपन। वोला, 'आज रात को मेरे घर खाओगे, भूल न ना कहीं।'

मैंने कहा, 'लेकिन तुम तो ड्यूटी पर जा रहे हो, तुम तो घर रहोगे हीं।'

तपन वोला, 'मैं नहीं रहूंगा तो क्या हुआ, कुंज है, मेरी वहन है।'

'मेरे लिए तकलीफ की क्या ज़रूरत है, भाई? तुम्हारी स्त्री की परेशानी ढ़ जायगी।'

तपन ने मेरे चेहरे की ओर देखा। पूछा, 'तुम्हें पता नहीं?'

वोला, 'किस वात का?'

'मेरी स्त्री की तो मृत्यु हो गयी।'

वड़ा अचरज हुआ मुझे।

वोला, 'अच्छा! क्या हुआ था उसे?'

'होगा क्या! आदमी मरते नहीं हैं क्या? हमेशा जिन्दा रहते हैं क्या आदमी?'

जैसे कोई खास वात नहीं हुई है, ऐसा भाव दिखलाया तपन ने। मैंने देखा कि तपन में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ था।

'और तुम्हारी मां का क्या हाल है?'

'मां उसी तरह है...'

आंखों के सामने जैसे मैं गायत्री मौसी को देखने लगा। जैसे अक्षय, अजर, अमर आयु लेकर पृथ्वी पर आयी है गायत्री मौसी। एक दिन जिसने अपनी आयु को समाप्त कर देने की चेष्टा की थी, वही व्यक्ति आयु का दास वना जीवित है—यह भी क्या कम विडम्वना है!

तपन ने कहा, 'अव झगड़ा करने को कोई आदमी नहीं है तो सिर्फ मेरे ही साथ झगड़ा करती है।'

कहकर हो-हो करके हंसने लगा तपन।

इसके वाद वोला, 'लेकिन मेरे साथ झगड़ा करके तृप्ति नहीं मिलती मां को।'

'क्यों?'

'अरे, मैं घर में रहता ही कितनी देर हूं। मुझे तो वीच-वीच में गाड़ी लेकर पूरे दिन ही वाहर रहना पड़ता है—घर में रहूंगा तभी तो झगड़ा

करेगी।'

आज इतने दिन बाद गायत्री मौसी की याद आने पर थोड़ा कुतूहल हुआ मन में। तबियत हुई कि जाकर देख आऊं क्या हाल है उन सबका। गायत्री मौसी ने क्या फिर कभी आत्महत्या की चेष्टा की थी पिछली बार की तरह? या अब भी क्या उसी एक पैर को लेकर झगड़ा करने के लिए प्रतिपक्ष को ढूंढते-ढूंढते हैरान होके बिस्तर पर पड़ी कराह रही है पहले की तरह!

जीवित अवश्य है गायत्री मौसी। जिसकी अभी आयु शेष है उसे कौन मार सकता है? क्या गायत्री मौसी की क्षमता के अन्दर है आयु की यंत्रणा से सहज ही में मुक्ति पाना!

•

हो सकता है यही जीवन हो। जिन्दा रहने की ख्वाहिश रहने पर भी जिस तरह जिन्दा रहना मुमकिन नहीं, उसी तरह मरने की ख्वाहिश होने पर भी क्या मरा जा सकता है? इसी मरने-जीने के द्वंद्व को ही तो जीवन-संग्राम कहते हैं। बाहरी आघात तो नियत जीवन को अस्त-व्यस्त करना चाहेगा ही, अन्तर का जीवन ही सर्वदा उसका प्रतिरोध करेगा। यह आघात और यह प्रतिरोध, यह अत्याचार और यह प्रतिकार, यही सब तो है मनुष्य का इतिहास। अनादि युग से इसी इतिहास ने ही मनुष्य को आज वर्तमान स्तर पर लाकर पटका है। मनुष्य को मिटा डालने की चेष्टा नयी नहीं है। उस आदिकाल में सर्वप्रथम आदिम मनुष्य की आत्मरक्षा के लिए जिस तरह अस्त्रों का आविष्कार हुआ था, आज भी हो रहा है उसी तरह। तब तीर-धनुष का आविष्कार हुआ था, अब उनसे भी अधिक भयंकर मारणास्त्रों का हो रहा है। बहाना वही एक है—आत्मरक्षा, पर वास्तविक उद्देश्य है हत्या।

और हत्या का प्रसंग आने पर अभय की बात आ जाती है। जितना भय है संसार में, उतना ही है अभय। एक चंगेजखां या तैमूर लंग आया है और साथ ही साथ आये हैं ईसा मसीह, बुद्ध, शंकराचार्य। मनुष्य ने एक हाथ में खड्ग उठाया है, और एक हाथ उठाया है अभय मुद्रा में। भारतवर्ष की देव-देवियों की मूर्तियों में उस युग के मनुष्यों ने इसी अमृतवाणी को मुद्रित करना चाहा था। उन्होंने कहा था: मनुष्य की मृत्यु नहीं हो सकती।

दरअसल उन दिनों के आदमियों में और आज के आदमियों में कोई फर्क नहीं है। उस समय भी जिस तरह भय था, उसी तरह अभय भी था। तब चंगेजखां थे, ईसा मसीह थे। आज भी हैं चंगेजखां, पर उनके साथ है हम्पू०

एच० ऑडेन, कार्ल सैण्डवर्ग, विलियम फॉकनर।

इसके वाद जिस आदमी की कहानी कहने जा रहा हूं वह भी थे ऐसे ही एक अभयदाता, मिस्टर वमफील्ड आई० सी० एस०। वीस साल पहले वही मिस्टर वमफील्ड थे वंगाल के गवर्नर के होम सेक्रेटरी। वड़ी हृदयग्राही कहानी है उनकी। भारत स्वतन्त्र होने के वाद केवल एक वार वे यहां आये थे। तभी मुझे उनके विपय में पता चला।

इसी कहानी को प्रारम्भ करता हूं अव :

षष्ठ

बहुत दिन बाद मिस्टर बमफील्ड भारत मे आये। बहुत दिन बाद यानी करीब बीस साल बाद। इस बीस साल के अरसे मे कितना रद्दोबदल हो गया है हिन्दुस्तान मे, कितना उलट-फेर हो गया है! और यह तो होगा ही। सर जान एण्डरसन जब बगाल के गवर्नर थे तब के आई० सी० एस० है मिस्टर बमफील्ड। बंगाल के गवर्नर के होम-सेक्रेटरी।

इसी सेंट जॉन चर्च के कब्रिस्तान मे ही जूली को दफना गये थे मिस्टर बमफील्ड। जूली थी मिसेज बमफील्ड।

अन्तिम दिनो मे बहुत डर गयी थी जूली। जब मिस्टर बमफील्ड मिदनापुर के मजिस्ट्रेट थे तब रात को नीद नही आती थी जूली को। एक-एक करके बहुत-से मजिस्ट्रेटो की हत्या हो गयी थी इस मिदनापुर मे ही। तभी जूली कहा करती थी, 'चलो डियर, हम लोग इण्डिया छोडकर होम लौट चलें।'

चटगाव की आर्मरी पर हमला हुआ। ईस्ट बंगाल मे एक के बाद एक करके अंग्रेज अफसर आतकवादियो की गोलियो के शिकार होने लगे। तब बंगाल मे कोई अफसर पोस्टिग नही लेना चाहता था। जमाना वाकई बहुत खराब था। अफसरो के चपरासियो तक पर यकीन नही किया जा सकता था।

उस जमाने मे भी मिस्टर बमफील्ड अन्त तक अक्षत देह से जीवित रह-कर नौकरी कर गये। और सिर्फ नौकरी ही नहीं, नौकरी के साथ इज्जत भी हासिल की थी। एम० बी० ई०, ओ० बी० ई० वगैरह खिताब मिले थे रिग से।

सिर्फ वह एक ही नुकसान हो गया था उनका। एक दिन जूली की मृत्यु हो गयी कलकत्ता में एकाएक। मेडिकल कॉलेज के डाक्टर कोहान भी नहीं बचा सके उसे। ओ डियर, डियर। इतनी बड़ी क्षति को भी अतनोगत्वा सहन कर लिया था मिस्टर बमफील्ड ने। एक दिन सेंट जॉन चर्च की सिमेट्री की कब्र में जूली को सुलाकर नौकरी छोडके चले गये थे साहब। इसके बाद फिर नही आये थे भारत मे।

इस दरमियान बरतानिया की सरकार हिन्दुस्तान छोडकर चली गयी। उसे भी आज उन्नीस साल हो गये। नाइंटीन इयर्स। एक इन्सान के

में उन्नीस साल का अरसा क्या कुछ कम होता है।

एकाएक एक धक्का लगा वदन को।

जेट प्लेन भारत की भूमि पर उतरा। मिस्टर वमफील्ड ने धीरे-धीरे कमर की वेल्ट खोल डाली। तव तक वह जेट प्लेन लुढ़कते-लुढ़कते एक जगह आकर स्थिर हो गया। मिस्टर वमफील्ड ने कांच की खिड़की में से वाहर की ओर देखा। कुछ भी नहीं पहचान पाये।

वहुत दूर कतार वांधे कुछ लोग खड़े हैं। आश्चर्य ! उन्हें रिसीव करने कोई नहीं आया है आज, कोई भी नहीं। नो वडी ! हालांकि एक ज़माना था जव उनके आसाम या दिल्ली से आने पर उनके ऑफिस के वावू लोग आकर सियालदह या हावड़ा स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर खड़े रहते थे। इसके वाद जव वे ट्रेन से उतरते थे, तव सवमें छीना-झपटी मच जाती थी उनके सामने आने के लिए। उन्हें 'विश' करने के लिए, उनकी नज़र में पड़ने के लिए। एक दिन मिस्टर वमफील्ड की इच्छा पर ही वहुत-से भारतीयों का उत्थान-पतन निर्भर करता था। वह भी एक जमाना था। भारत की संभवतः कोई क्षति नहीं हुई है। भारत स्वतन्त्र हो गया है। पर मिस्टर वमफील्ड की क्षति हुई है, पेंशन की मोटी रकम पर व्यतीत करना पड़ रहा है अपना एकरस जीवन। जूली नहीं है। जूली कैलकेटा के सैंट जॉन चर्च की सिमेट्री में अव भी सोयी हुई है। 'पूअर जूली !

वही कलकत्ता है। दैट ओल्ड कैलकेटा। इस रास्ते से वीस साल पहले वहुत मरतवा गुज़रे हैं मिस्टर वमफील्ड। इस दमदम जेल में कई वार उन्हें आना पड़ा है। कुछ कांग्रेसियों को यहां दमदम जेल के अन्दर वन्द कर रक्खा गया था। सिर्फ क्या इस दमदम जेल में ही। उस अलीपुर प्रेसिडेंसी जेल में भी जाना पड़ता था उन्हें—जहां सुभाष वोस वन्दी थे।

सव याद आने लगा मिस्टर वमफील्ड को। सर जॉन एण्डरसन वड़े गुस्सैल गवर्नर थे। जाति के आस्ट्रेलियन और अच्छे क्रिकेटीयर भी थे। जेल में हंगर स्ट्राइक कर रहे थे तव कांग्रेसी नेता सव। वह सुभाष वोस, 'दी स्प्रिंगिग टाइगर', किसी तरह खाना नहीं खा रहा था।

मिस्टर वमफील्ड ने जाकर रिक्वेस्ट की उनसे। कोई फल नहीं हुआ।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन वीत गए। वड़ी वेचैनी में कटे मिस्टर वमफील्ड के ये दिन। रात को नींद नहीं आयी। एक आदमी भूखा रहेगा और वे सोयेंगे, यह कैसे संभव है ! अकस्मात्…

गाड़ी तब होटल के सामने आकर रुक गयी थी। होटल के बॉय दौड़े आये। इसके बाद मिस्टर बमफील्ड उसी पुराने होटल में दाखिल हुए। इस होटल में आये हैं पहले भी। एक जमाना था अब यहां बहुत-सी पार्टियां हुई हैं, बहुत-से डिनर हुए हैं। बहुत बार आना पड़ा है उन्हें यहां।

लेकिन वह जमाना गुजर गया है। अब उन्हें किसीने 'विश' नहीं किया। किसीने आगे बढ़कर रिसीव भी नहीं किया।

अपना नाम बताया उन्होंने। उनका नाम दर्ज कर लिया गया रजिस्टर में। टू हण्ड्रेड टेन। दो सौ दस। दो सौ दस नम्बर के कमरे में उनके रहने की व्यवस्था हुई। ट्रैवेल एजेन्सी के माध्यम से पहले ही सब कह रखा गया था। सारी व्यवस्था पूरी कर रखी गयी थी पहले से ही। कोई असुविधा नहीं हुई मिस्टर बमफील्ड को।

अपने कमरे में आकर चारों ओर अच्छी तरह देखा मिस्टर बमफील्ड ने। काफी सजा हुआ था कमरा, एयर कण्डिशण्ड।

इसके बाद उन्होंने खिड़की खोलकर बाहर की ओर देखा। बड़ी सुहावनी धूप निकल आयी है बाहर। लवली सन्। दूर पर गवर्नर्स हाउस को देखने की कोशिश की उन्होंने। कुछ नहीं बदला है कहीं। जैसा था वैसे ही है। सिर्फ जूली ही नहीं है। जूली इज एवसेण्ट।

मिस्टर बमफील्ड टेलिफोन स्टैण्ड की ओर गये।

•

बालीगंज की ओर से एक गाड़ी उत्तर की ओर जा रही थी। जिस दिन ऑफिस रहता है उस दिन गाड़ी नियम से ठीक सुबह के नौ बजे आती है। इस बड़े होटल के सामने से गुजरकर फिर थोड़ा आगे बढ़कर बायीं ओर मुड़ जाती है।

मिस्टर बैनर्जी गाड़ी के पीछे की सीट में चुपचाप बैठे रहते हैं, और रहीम बड़ी होशियारी से सबको बचाकर सामने ले जाता है गाड़ी को। बहुत दिन का पुराना ड्राइवर है रहीम। चालीस साल पुराना लाइसेंस है उसका। मिस्टर बैनर्जी की गाड़ी चलाने से पहले वह और बहुत-से मोटर-मालिकों का बहुत सारी व्यक्तिगत और गोपनीय क्रिया-कलापों का मूक साक्षी रहा है, जिन्हें जानना और किसीके बस की बात नहीं।

[illegible] आये हैं और गये [illegible] दरिया-

रहीम वोला, 'सलाम रामप्रसाद भइया।'

रामप्रसाद ने पूछा, 'वैनर्जी साहव का मिज़ाज कैसा है आज रहीम हव !'

रहीम वोला, 'साहवों का मिज़ाज कभी दुरुस्त रहता है रामप्रसाद ? ाहवों का मिज़ाज कभी दुरुस्त नहीं रहना चाहिए।'

'क्यों भइया, दुरुस्त क्यों नहीं रहना चाहिए ?'

रहीम ने कहा, 'मिज़ाज दुरुस्त रहने पर तो साहवों का रौव ही नहीं मानेगा कोई रामप्रसाद।'

'वड़ी अजीव दुनिया है भइया, ताज्जुव की वात है।'

इसके वाद करीव की एक पान की दुकान पर जा खड़ा हुआ रहीम। सही मानों में दुकान नहीं कहा जा सकता है इसे। दो वांस के डंडों पर टाट का छाजन टांगकर पिछले कई महीनों से चालू हुई है यह दुकान। गैरकानूनी दूकान है यह। गैरकानूनी है दुकान तभी खैरात करनी पड़ती है। पुलिस कान्स्टेवल या राइटर्स विल्डिग के दरवान-चपरासियों को मुफ्त पान-वीड़ी की भेंट देनी पड़ती है।

रहीम वहीं जाकर वैठ गया। फिर वोला, 'ज़र्दापत्ती वाला पान दो भइया।'

लेकिन वहुत दिन पहले जव रहीम शुरू-शुरू में आया था इस नौकरी में, व ऐसा नहीं था। साहवों का ज़माना था वह। साहवों के ज़माने में इस ारह पान-वीड़ी का इस्तेमाल नहीं चल पाता था। गाड़ी की स्टियरिंग पर वैठा रहना पड़ता था।

एक वार एक साहव ने ड्राइवर को वुलाया, गाड़ी छोड़कर कहीं चला गया था तव ड्राइवर। चपरासी के आकर ढूंढ़ने पर ड्राइवर नहीं मिला था। फौर नौकरी से वरखास्त हो गया वह। वेकार हो गया वेचारा।

इन सव वाकियों को जानता है रहीम, सिर्फ रहीम ही नहीं, सव जान हैं। ये सव किस्से उन दिनों वॉय-वैरा-चपरासियों की ज़वानों पर फिरते र थे राइटर्स विल्डिग में, इनपर नुक्ताचीनी होती थी, वहस चलती थी। साहव अच्छा है, कौन साहव खराव है, यह ज़वान ही ज़वान पर फैल था तमाम चपरासी-ड्राइवरों की जमात में।

इसके वाद उस वार वह वाकिया हुआ। वही खून-खरावा। राइटर्स वि में घुसकर ही लोमैन साहव को मार डाला स्वदेशी वालों ने। खून का प चलने लगा वेचारे लोमैन साहव के मुंह से।

छोटा था तब रहीम।

चारों ओर पुलिस की सीटी बज उठी, भगदड़ शुरू हो गयी ऑफिस के सामने।

गोली चलने की आवाज आने लगी कान में। बाप के साथ तब दफ्तर में नौकरी की कोशिश में लगा था रहीम। लेकिन लग नहीं रही थी नौकरी।

बाप कहता था, 'लगेगी, लगेगी, तेरी नौकरी जरूर लगेगी।'

पहले दफ्तर में चपरासी की नौकरी की कोशिश की उसके बाप ने। बाप चपरासी था, लड़के को भी चपरासी ही होना था तब।

लेकिन बहुत कोशिश करने पर भी रहीम को जब नौकरी नहीं मिली तब बड़ी ठेस पहुंची बाप को।

आखिर में कोई दूसरा चारा न देखकर बाप ने उसे मोटर ड्राइवरी सीखने भेजा। तब मोटर-ड्राइविंग सिखाने के इतने स्कूल-कॉलेज नहीं थे। इसलिए उसकी खुशामद करके स्टियरिंग पर बैठ-बैठकर तजरबा हासिल करना पड़ता था।

फिर एक साहब आया। उसका नाम था बमफील्ड साहब। बंगाल के छोटे लाट साहब का होम-सेक्रेटरी। उसी की मेम साहब को एकाएक पसन्द आ गया रहीम।

छोटे लाट साहब के जनानखाने में गया था रहीम का बाप, साथ में रहीम को भी ले आया था।

देखने में गजब की खूबसूरत थी मेम साहब, उसी बमफील्ड साहब की मेम। उसने पूछा, 'यह कौन है ?'

करीब ही खड़े एक बैरा ने कहा, 'इसका बाप होम साहब का खास चपरासी है।'

मेम साहब ने पूछा, 'यह क्या करता है ?'

बैरा ने कहा, 'हुजूर, यह मोटर ड्राइविंग जानता है, पर नौकरी नहीं मिल रही है इसे।'

तब तक बाप भी आ गया था वहां।

मेम साहब को देखते ही बाप ने बड़े अदब से झुककर सलाम किया।

'तुम्हारा लड़का नौकरी करेगा ?'

'नौकरी मिलने पर तो मेरी जिन्दगी बच जाएगी हुजूर, खाने-पहनने का एक वसीला हो जाएगा।'

देखा जाए तो उसी दिन से ही नौकरी मिल गया रहीम को, ड्राइविंग लाइसेंस तक नहीं देखना चाहा। पूछा तक नहीं कि लाइसेंस नया है या पुराना।

जब साहब घर लौटे तब पोर्टिको के पास खड़ा था रहीम।

साहब को देखकर समझ गया कि उसीका नाम बमफील्ड साहब है।

बिना कहे-सुने सीधे सलाम ठोक दिया रहीम ने।

साहब ने पूछा था, 'कौन हो ?'

रहीम ने सामने जाकर कहा था, 'आपका नौकर, हुज़ूर !'

उसकी बात सुनकर बमफील्ड साहब को अचम्भा हुआ था पहले।

आज से पहले तो साहब ने उसे कभी देखा नहीं था।

लेकिन मेम साहब ने वहां आकर सारा मामला साफ कर दिया था। कहा था, 'मैंने उसे अपना ड्राइवर रक्खा है आज से।'

'ड्राइवर ? क्यों, वह ड्राइवर कहां गया ?'

मेम साहब बोलीं, 'उसे मैंने डिसचार्ज कर दिया है।'

'व्हाई ? क्यों ?'

मेमसाहब ने कहा, 'ही वाज़ ए मोस्ट डिसओबिडियेंट फैलो, मोस्ट अनपंक्चुअल।'

साहब ने और कुछ नहीं कहा, दोनों भीतर चले गये बातें करते-करते। साहब के दिमाग में तब एक तूफान उठा हुआ था। बहुत-से बखेड़े फैले थे तब बंगाल में। स्वदेशी वाले पिस्तौल चला रहे थे अंग्रेज़ों पर। बहुत-से साहब उनकी गोलियों के शिकार हो चुके थे।

और मुल्क का हाल भी खराब था तब। अंग्रेज यकीन नहीं करते थे हिन्दुस्तानियों पर। बहुत जांच-पड़ताल के बाद नौकरी में लिये जाते थे देसी आदमी। बंगाली बाबुओं के पीछे पुलिस के गुरगे लगे रहते थे। वे लोग तब 'वन्दे मातरम्' का नारा बुलन्द करते थे।

वन्दे मातरम् !

यह नारा याद है रहीम को अभी तक।

रहीम के बचपन में पार्क की सभाओं में बंगाली बाबू लोग 'वन्दे मातरम्' कहकर चिल्लाया करते थे। विलायती कपड़ा जलाते थे। गांधी महाराज का जुलूस निकालते थे। और एक नामी आदमी था तब—उसका नाम था सी० आर० दास।

जब रहीम बमफील्ड साहब को गाड़ी में लेकर जाता था, तब बीच-बीच

में कुछ और साहब भी रहते थे, पुलिस के बड़े साहब भी रहते थे बहुत-से मौकों पर। वे अंग्रेजी में बातें करते रहते थे आपस में।

रहीम की समझ में कुछ नहीं आता था।

लेकिन बीच-बीच में उनकी जबान पर आये दो-एक आदमियों के नाम, दो-एक चीजों के नाम सुनकर समझ जाता था। गांधी का नाम, कभी सी० आर० दास का नाम, कभी 'वन्दे मातरम्', कभी पिस्तौल की गोली।

वे दिन ही अलहदा थे।

लेकिन हमेशा साहब को नहीं ले जाना पड़ता था। गाड़ी में कभी-कभी साहब और मेम साहब दोनों चढ़ते। अधिकतर मेम साहब ही चढ़ती थीं।

बड़ी खूबसूरत थीं मेम साहब।

रहीम गाड़ी चलाता और मेम साहब पीछे की सीट पर बैठी रहतीं। तब कलकत्ता की सड़कों पर इतनी गाड़ियां नहीं चलती थीं। गाड़ी देखने पर सड़क पर लोग हट जाते थे। तब साहब-मेमों के प्रति भक्ति थी बंगालियों के मन में। साथ ही डर भी था। मेम साहब होटल में जातीं। होटल में जाकर क्या करती थीं यह नहीं देख पाता था रहीम। इसके बाद जब लौटतीं तब अक्सर बहुत रात हो जाती थी। भीतर जाकर या तो नाचती थीं, या खाना खाती थीं। इसके बाद जब गाड़ी में आकर चढ़ती थीं तब उनके बदन से शराब की बू आया करती, लेकिन शराब के नशे में कभी अपना काबू नहीं खोती थीं मेम साहब।

उसी नशे की हालत में मेम साहब बख्शीश देती थीं रहीम को।

तब रुपये की कीमत थी। कभी-कभी एक-दो रुपये तक दे डालती थीं बख्शीश में।

मेम साहब कहती थीं, 'रहीम, साहब को कुछ न बताना।'

लेकिन रहीम क्या नहीं कहेगा साहब को, यह नहीं बताती थीं। बख्शीश देकर रहीम का मुंह बन्द कर देती थीं सिर्फ।

लेकिन दिन-ब-दिन मेम साहब का यह बेहिसाबपन या रवैया तूल पकड़ने लगा। आखिर यह बेहिसाबपन नहीं था तो था क्या! बहुत व्यस्त रहते थे तब साहब ऑफिस के कामकाज में। और तब काम भी बहुत था ऑफिस में। सारे कलकत्ता में तब धर-पकड़ का जोर था। पुलिस कमिश्नर की हत्या का षड्यंत्र कर रहे थे क्रान्तिकारी।

साहब को बात-बात पर बाहर जाना पड़ता था।

आज ढाका, कल मैमनसिंह, परसों वारिसाल।

वारिसाल ही तव सवसे ज़्यादा गरम था। साहव की कमर में हरदम रिवाल्वर बंधा रहता था। इसी तरह साहव हिल्ली-दिल्ली घूमा करते थे।

लेकिन वाहर से वहुत दिन वाद लौटकर अकसर पाते थे, मेम साहव घर पर नहीं हैं।

साहव सवसे पूछते, 'मेम साहव कहां हैं?'

कोई नहीं वता पाता कि मेम साहव कहां हैं, और जानने पर भी मुमकिन नहीं था वतलाना। घूस देकर सवका मुंह वन्द कर रक्खा था मेम साहव ने।

और उधर शायद रहीम मेम साहव को लेकर डायमण्ड हारबर के रेस्ट-हाउस में जा पहुंचा होता। मेम साहव अकेली नहीं होतीं, साथ एक साहव भी रहता।

जैसे इस वक्त वैनर्जी साहव को ले जाता है रहीम, उसी तरह। वैनर्जी साहव के साथ कौन रहता है, किसके साथ वैनर्जी साहव डाक वंगले में रात विताते हैं, वैनर्जी की मेम साहव को यह वतलाने की वर्जना है।

हालांकि यही वैनर्जी साहव तव छोटे ओहदे पर काम करते थे सेक्रेटरियट में। वमफील्ड साहव के कमरे में घुसने की हिम्मत ही नहीं होती थी वैनर्जी साहव की। उन दिनों सेक्रेटरियट के चारों तरफ पुलिस के कड़े पहरे का प्रवन्ध रहता था। वाहर का कोई भी आदमी विना परमिट के अन्दर नहीं जा पाता था। लोमैन साहव की हत्या के वाद से ही यह नियम लागू हो गया था।

रहीम का भी एक आइडेंटिटी कार्ड वना।

रहीम ने एकाएक साहव के कमरे में जाकर देखा कि वमफील्ड साहव वैनर्जी साहव को वुरी तरह डांट रहे हैं।

किसी अनजाने आदमी को वैनर्जी साहव ने आइडेंटिटी कार्ड दे दिया था।

'तुमने विना अच्छी तरह जांच-पड़ताल किये कार्ड क्यों दे दिया? ह्वाई?'

'मुझसे गलती हो गयी है, सर।'

'नो नो नो...'

सहसा वमफील्ड साहव जोर-जोर से सिर हिलाने लगा—'नो नो-नो...'

फिर कहा, 'गलती हो गयी है कहने से ही तुम्हारा यह संगीन कसूर माफ नहीं हो सकता। अंग्रेज सात समुन्दर तेरह नदी पार करके क्या हिन्दुस्तान में झूठमूठ के लिए आये हैं? हम लोगों को किसी पर यकीन नहीं है। हम लोग

ब्रिटिश हैं, एशिया में हमने साम्राज्य बनाया है अपनी शक्ति और बुद्धि के बल से। हमने किसीपर विश्वास नहीं किया, न विश्वास करते हैं, करेंगे भी नहीं।'

बैनर्जी साहब ने अपना दोष स्वीकार करके कहा, 'मैं जानता हूं, सर।'

'देन ह्वाई, उस आदमी को तुमने आइडेंटिटी कार्ड दिया? ह्वाई? डू यू नो हिम?'

बैनर्जी साहब चुप रहे।

'जानते हो पुलिस कमिश्नर की रिपोर्ट में उस आदमी को कांग्रेस का स्पाई कहा गया है?'

'नहीं सर, मुझे नहीं पता था, गलती के लिए माफी मांगता हूं।'

गरज उठे *क्रमफील्ड साहब, 'इण्डिया में बहुत-सी जातियां हैं, जानते हो सबसे ज्यादा हम लोग किससे डरते हैं? वह है यह बंगाली जाति।* हालांकि तुम भी बंगाली हो बैनर्जी, लेकिन हुकूमत के काम में सबको दुत्कार देने से तो काम चलेगा नहीं। सब बंगालियों को अगर छोड़ दें तो काम कैसे चलायेंगे हम? तभी तुम जैसे कुछ बंगालियों को हुकूमत के इंतजाम के लिए ले लिया है। तुम लोगों को रुपये देकर काम कराये ले रहे हैं। तुम लोगों में से किसीको 'रायसाहब' या 'रायबहादुर' बना दिया है, किसीको 'लार्ड' बना दिया है। जैसे लार्ड सिन्हा। बट वी डोंट बिलीव यू पीपल...'

बनर्जी साहब ने कहा, 'लेकिन सर, मैंने ही खुद दस आतंकवादियों को पकड़वा दिया है, फांसी भी हो गयी है उनको।'

'तो सिर्फ दस ही क्यों? सुना है दैट सुभाष बोस इज आल्सो ए टेररिस्ट।'

बैनर्जी साहब ने कहा, 'हां सर, मैंने भी सुना है यह।'

'तो उसे नहीं पकड़वा सकते?'

बैनर्जी साहब ने जवाब दिया, *'क्यों नहीं सर, थोड़ी कोशिश करने पर यह* भी कर सकूंगा। मेरा खयाल है सर, आल बेंगोलीज आर टेररिस्ट्स। तमाम बंगाली टेररिस्ट हैं।'

'हाऊ डू यू नो दैट? तुम्हें कैसे पता चला इसका?'

बैनर्जी साहब ने कहा, 'मुझे सब पता है सर, मुझे उम्मीद है कि एक दिन सबको पकड़वा दूंगा, जितने लीडर हैं कांग्रेस के, सबको।'

'ठीक है, जल्दी करो, डू दैट ऐज क्विकली ऐज पॉसिबल। जितनी जल्दी हो सके पकड़वा दो सबको। अधिक दिन और मैं यह टेन्शन नहीं बरदाश्त कर

पा रहा हूं। देखो बैनर्जी, अभी नयी शादी करके आया हूं इस होम-सेक्रेटरी का काम करने, मेरी होम-लाइफ नहीं है कोई, मैं होम-लाइफ एनज्वाय नहीं कर पा रहा हूं। इस कांग्रेस पर काबू पाकर मैं थोड़ा आराम से घर में रहना चाहता हूं। मिसेज़ बमफील्ड इज टायर्ड ऑफ दिस सर्विस। मेरी इस नौकरी से परेशान हो उठीं हैं मिसेज़ बमफील्ड।'

इसके बाद एकाएक रहीम को देखकर बमफील्ड साहब ने पूछा, 'ह्वाट रहीम, क्या चाहते हो?'

रहीम बोला, 'हुजूर, मेम साहब ने यह चिट्ठी दी है।'

रहीम जानता था कि मेम साहब की चिट्ठी में क्या लिखा है। मेम साहब ने लिखा है कि रहीम को लेकर वे बहुत दूर घूमने जा रही हैं, या तो डायमण्ड हारबर या फालता, या रांची, या हजारी बाग, या और कहीं। कुछ अच्छा नहीं लग रहा है और मेम साहब को। कब लौटेंगी, ठीक नहीं। कुछ खयाल न करना डियर, आई एम फीलिंग वेरी लोन्ली।

चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते बमफील्ड साहब की नाक से एक गहरी उसांस स्वत: ही निकल गई। और किसीने उसपर भले ही गौर न किया हो, रहीम ने देख लिया था उसे।

लेकिन कर भी क्या सकता था रहीम?

बमफील्ड साहब की बीबी को तो बहुत दिनों से देखता आ रहा था रहीम। न जाने कहां के एक साहब के बच्चे को साथ लिए गाड़ी पर चढ़ती थीं मेम साहब और रहीम हवा से बातें करता हुआ गाड़ी चलाये जाता था।

कहां जायेंगे दोनों, यह भी निश्चित नहीं रहता था।

मेम साहब कहती, 'जिधर तुम्हारी खुशी हो चलाओ रहीम, जिधर तुम्हारी मरजी हो।'

रहीम किसी दिन जाता था सीधे ग्राण्ड ट्रंक रोड होकर पश्चिम की ओर, किसी दिन उत्तर की ओर, किसी दिन दक्षिण की ओर।

उधर बमफील्ड साहब का मिजाज वैसे ही कड़ा हो उठा था। देश की दशा जैसे-जैसे जटिल होती जा रही थी वैसे-वैसे ही उग्र बनती जा रही थी साहब की प्रकृति। इसी हालत में एक दिन साहब घर लौटे।

आते ही पूछा, 'मेम साहब कहां हैं?'

शक तो बहुत दिनों से हो रहा था। साहब को लग रहा था कि उसकी आंखों की ओट में जिस तरह बेंगोली टेररिस्ट्स उनके साम्राज्य के खिलाफ

साजिश कर रहे हैं, वैसे ही बड़ी पोशीदगी में जैसे उसकी फैमिली साइड में भी कोई साजिश चल रही है।

रात बड़ी सूनी मालूम हुई मिस्टर बमफील्ड को उस दिन। उसे लगा जैसे बगाली टैररिस्टस उसकी रात की नींद, दिन की शान्ति, घर की स्त्री—सब कुछ छीनकर भाग गए हैं।

'रहीम कहा है ?'

'रहीम मेम साहब को गाड़ी में लेकर गया है हुजूर।'

'ठीक है।'

और कुछ नहीं कहा बमफील्ड साहब ने। और किसीको कोई हुक्म नहीं दिया बँगाल गवर्नमेंट के होम-सेक्रेटरी ने।

फिर एकाएक एक काम कर बैठा। एकाएक गवर्नर को टेलीफोन कर बैठा। सर जॉन केसी तब गवर्नर थे।

'येस बमफील्ड ? ह्वाट इज इट ?'

बमफील्ड ने कहा, 'योर ऐक्सीलेन्सी, अभी-अभी एक सीरियस खबर मिली है मुझे।'

'क्या खबर है ?'

मिस्टर बमफील्ड ने कहा, 'खबर मिली है कि कलकत्ता में एक अपराइजिंग होगी आज।'

'अपराइजिंग ? कलकत्ता में ? आज ? ह्वाट डू यू टॉक ?'

'येस, योर एक्सीलैंसी। मुझे एक कॉनफीडेंशल सोर्स से खबर मिली है कि कलकत्ता के कांग्रेसी एक अपराइजिंग करेंगे, आज ही। उन्होंने तय किया है कि आज रात को गवर्नर्स हाउस में बम फेंकेंगे।

'अच्छा ! आर यू श्योर ?'

मिस्टर बमफील्ड ने कहा, 'इसीकी तैयारी में लगे हैं कलकत्ता के तमाम कांग्रेसी।'

अचम्भा हुआ सर जॉन केसी को। बोले, 'लेकिन गांधी तो मुझसे मिलकर कह गए हैं कि आखिर तक नॉन-वायोलेंट रहेंगे वे लोग।'

मिस्टर बमफील्ड ने कहा, 'मिस्टर गान्डि इज ए लायर'

'यह कैसे हो सकता है ? लार्ड इरविन ने तो मुझसे ऐसी बात नहीं कही है। लार्ड इरविन ने तो मुझसे कहा है . गान्डि इज ए गुड मैन।'

मिस्टर बमफील्ड बोले, 'लेकिन मेरी खबर दूसरी तरह की है. आई एम

पेक्ट ऐन अपराइज़िंग।'

'तब क्या करोगे ? क्या करना चाहते हो ?'

मिस्टर बमफील्ड बोले, 'मैं करफ्यू डिक्लेयर करना चाहता हूं।'

'करफ्यू ?'

'येस, योर एक्सीलैंसी।'

'लेकिन कब से कब तक ?'

मिस्टर बमफील्ड ने कहा, 'करफ्यू अभी शुरू करना चाहता हूं, इसी क्षण और सिचुएशन देखकर हटा लूंगा।'

'ऑल राइट।'

सर जॉन केसी अपने होम-सेक्रेटरी की बात नामंज़ूर नहीं कर सकते। तभी फोन-कॉल चला गया पुलिस-कमिश्नर के पास। खबर गयी रायटर को, ए० पी० आई० को। खबर गयी ऑल इण्डिया रेडियो को। खबर फैल गयी दुनिया-भर के शहरों में—गांवों में—जनपदों में। खबर थी : कलकत्ता में कांग्रेस पार्टी लड़ाई के मौके का फायदा उठ कर गवर्नर्स हाउस पर हमला करना चाहती है। इसलिए सब जगह करफ्यू जारी करना पड़ा।

कलकत्ता शहर में यों ही तब ब्लैक-आउट चल रहा था पूरी तरह।

अकाल पड़ा हुआ था बंगाल में। गांवों से झुंड के झुंड लोग चले आ रहे थे कलकत्ता के लंगरखानों में। 'मांड़ दो, मांड़ दो', कहकर चिल्लाते थे अली-गली में।

यह उसी वक्त की कहानी है। रहीम तब बमफील्ड साहब की मेम साहब को लेकर रांची के रेस्ट-हाउस में था। मिसेज़ बमफील्ड तमाम दिन एक छोकरे साहब के साथ शराब पीती हैं, नाचती हैं, गाती हैं।

रांची के होटल का दिन तब रात में तबदील हो जाता, कभी फिर रात भी दिन बन जाती।

मेम साहब की ज़बान लड़खड़ाने लगी थी तब।

इसके बाद जब एक दिन नशा टूटा, तब खयाल आया कि कलकत्ता नाम की एक जगह है भूगोल में, मिस्टर बमफील्ड नाम का एक पति भी है मेम साहब का।

और इसके अलावा सभी तरह के नशे का एक अन्त भी तो होता है, सभी प्रकार की मदिराओं में एक अवसाद भी होता है। तब फिर हांक हुई रहीम की। तब फिर होश हुआ मेम साहब को।

पुकारा, 'रहीम।'

रहीम हाजिर था हुजूर में।

बोला, 'हुजूर।'

मेम साहब बोली, 'चलो।'

•

रामप्रसाद बोला, 'भइया दुनिया बदल गयी।'

एक पुराना और समझदार आदमी होने के नाते ड्राइवरों की जमात में बड़ी इज्जत थी रहीम की।

रहीम बोला, 'दुनिया का तुमने अभी देखा ही क्या है रामप्रसाद ? दुनिया तो मैंने देखी है। देखा भी बहुत है मैंने, जाना भी बहुत है।'

तभी बहुत देखकर और बहुत सुनकर अब चुप पड़ गया है रहीम। तभी बैनर्जी की मेम साहब जब खोद-खोदकर साहब के बारे में पूछती हैं तब चुप रहता है रहीम। बहुत बख्शीश पाकर भी कुछ नहीं कहता है, सिर्फ कहता है, 'मुझे पता नहीं हुजूर।'

एकाएक लगा कि डलहौजी स्क्वॉयर में चारों ओर जैसे बड़ा शोरगुल मच गया।

रामप्रसाद बोला, 'क्या हुआ भइया ?'

रहीम भी जर्दापत्ती वाला पान चबाते-चबाते सब देख रहा था। बोला, 'शायद गोली चली होगी।'

'गोली ? कहां ?'

यह डलहौजी स्क्वायर की चिरचरित घटना है। कोई गौर नहीं करता इसपर। गोली चलती है और काम भी चलता रहता है। कलकत्ता शहर की तरह ही अनिश्चित जीवन है डलहौजी स्क्वायर का।

लोग काम करते-करते एकाएक सुनते हैं शायद श्याम बाजार में गोली चली है, या धर्मतला में। हो सकता है मरने की भी खबर आती है कान में, घायलों को अस्पताल में भेजने की खबर भी मिलती है, लेकिन इसपर सिर नहीं खपाता कोई। फिर अगले दिन नियमित जीवन जैसे चल रहा था वैसे ही चलता रहता है।

सहसा बैनर्जी साहब का चपरासी दौड़ते-दौड़ते आया।

बोला, 'रहीम ! साहब बुला रहे हैं तुम्हें—साहब बुला रहे हैं दफ्तर में।'

'साहब बुला रहे हैं ? क्यों ? साहब कहीं जायेंगे क्या ?'

'यह तो नहीं पता, अभी बुलाने को कहा है।'

आखिर हुआ क्या है ? साहब तो इस तरह कभी नहीं बुलाता है रहीम को। कहीं जाने की जरूरत पड़ने पर साहब खुद ही चला आता है।

'गोली चली है क्या भैया ?'

'मालूम नहीं।'

'तब इतना शोरगुल क्यों हो रहा है आस-पास में ?'

'क्या मालूम।'

रहीम जल्दी से मुंह का पान थूककर राइटर्स बिल्डिंग के भीतर दौड़ा गया।

उधर ऑफिस के अंदर एकाएक फिर मिस्टर बमफील्ड से मुलाकात हो जायगी, यह नहीं सोच पाये थे बैनर्जी साहब।

फोन आते ही बैनर्जी साहब ने रिसीवर उठाया। बोले, 'कौन ?'

ऑपरेटर बोला, 'सर, होटल से मिस्टर बमफील्ड आपसे बात करना चाहते हैं।'

'कौन बमफील्ड ?'

'ये सर, बहुत दिन बाद इण्डिया आये हैं। पहले वे थे बेंगाल गवर्नमेंट के होम-सेक्रेटरी…'

'मिस्टर बमफील्ड ! यह कहो। गिव हिम इमीडियेटली, लाइन अभी दो उन्हें।'

और उसके बाद ही वही गम्भीर आवाज़ सुनाई पड़ी टेलीफोन पर। वही अतिपरिचित आवाज़। एक दिन जिस आवाज़ से कलकत्ता शहर चौंक पड़ता था।

'आर यू बैनर्जी ?'

'येस, गुड मॉर्निंग मिस्टर बमफील्ड ! आप कब आये ?'

मिस्टर बमफील्ड बोले, 'मैं तुमसे एक बार मिलना चाहता हूं बैनर्जी।'

मिस्टर बैनर्जी बोले, 'मैं ही आऊं सर आपसे मिलने ?'

मिस्टर बमफील्ड बोले, 'नहीं, मैं ही आ रहा हूं—वट ह्वाट इज़ दिस ? इतना हल्ला-गुल्ला क्यों हो रहा है ?'

मिस्टर बैनर्जी बोले, 'सर, आप तो सब जानते हैं, कलकत्ता का तो यही हमेशा का हाल हैं।'

'अच्छा, मैं आ रहा हूं।' कहकर मिस्टर बमफील्ड ने फोन छोड़ दिया।

और थोड़ी ही देर बाद सीधे चले आये राइटर्स बिल्डिंग में। आते ही बोले, 'हैलो, हैलो, हैलो · '

मिस्टर बैनर्जी खड़े हो गये, 'बड़ा सौभाग्य है मेरा, आपकी तबियत कैसी है ?'

बमफील्ड साहब बोले, 'सम् ट्रबल चल रहा है तुम लोगों का बैनर्जी ? हमारे जमाने में जो ट्रबल था अब भी वैसा ही है क्या ? थोड़ा भी कम नहीं हुआ ?'

'नहीं सर, अब भी कम नहीं हुआ। बल्कि और बढ़ रहा है यह।'

'वह्वाई ?'

मिस्टर बैनर्जी बोले, 'मेरी बजाय आप ही ज्यादा अच्छी तरह बता सकते हैं इसका सबब, सर।'

'लेकिन मैं तो बहुत दिनों से आउट-ऑफ टच हूं। हुआ क्या है ? ह्वाट इज दी ट्रबल ? बताओ मुझे तुम।'

मिस्टर बैनर्जी ने कहा, 'ट्रबल की बात अगर कही जाय तो वह एक लंबा किस्सा हो जायगा, वह भी सुनाऊंगा मैं आपको। जानते हैं सर, तमाम दिन यही बात मैं सोचता हूं कि ह्वाट इज दिस ? क्यों हो रहा है ऐसा ? सोचते-सोचते दिन-रात कट जाते हैं, मुझे कोई समाधान नहीं मिलता।'

'हाऊ इज योर वाइफ ? तुम्हारी पत्नी कैसी है ?'

बैनर्जी साहब बोले, 'पत्नी से पिछले सात दिन से मेरी मुलाकात नहीं हुई है।'

'इसका मतलब ?'

बैनर्जी साहब बोले, 'मुलाकात करने का वक्त ही नहीं मिला। बहुत-सी फाइलें लेकर घर जाता हूं, रात को भी घर पर काम करता हूं।'

'अच्छा ! तुम्हारी स्त्री तो तुम्हारे साथ ही मकान में रहती है न ?'

'येस, तो भी मुलाकात नहीं होती।'

स्तंभित-से हो गए सुनकर बमफील्ड साहब।

बोले, 'ड् यू नो बैनर्जी, आई कमिटेड दी सेम मिस्टेक। मैंने भी यही भूल की थी।'

मिस्टर बैनर्जी बोले, 'लेकिन क्या करूं, बहुत काम है। यह देखिए न, शायद आज ही करफ्यू डिक्लेयर करना पड़ेगा।'

'करफ्यू ? क्यों ?'

एकाएक रहीम कमरे में आया। आकर वमफील्ड साहब को देखकर हैरत में आ गया।

'रहीम हो न ?'

रहीम ने वहुत दिन वाद साहब को देखकर सिर झुकाके हिन्दू कायदे से सलाम किया।

और फिर बोला, 'आप अच्छी तरह हैं, हुजूर ?'

मेम साहब कैसी हैं, यह भी पूछने जा रहा था। लेकिन वात जवान से निकलने जाकर भी अटक गयी।

वहां खड़े-खड़े ही रहीम जैसे सारी दुनिया की ही परिक्रमा कर आया। यह वही वमफील्ड साहव हैं।

उसे याद है, तव गाड़ी लेकर लौट रहा था रहीम रांची से। पीछे की सीट पर थी शराव के नशे में चूर मेम साहव और साथ में था वही छोकरा साहव का वच्चा।

गाड़ी हावड़ा स्टेशन के पास आते ही रात हो गयी। अंधेरा छा गया चारों ओर। रास्ते की सारी रोशनी वुझा दी गयी थी।

थोड़ा डर लगने लगा रहीम को। वह क्या हुआ ? ऐसा क्यों हुआ ?

एक जगह पुलिस ने आकर गाड़ी रोक दी।

'हूज देअर ? गाड़ी में कौन है ?'

रहीम ही ने जवाव दिया, 'वमफील्ड साहव की मेम साहव। वेंगोल गवर्नमेंट के होम-सेक्रेटरी।'

'उधर नहीं आ सकते। करफ्यू है उधर।'

लेकिन वमफील्ड साहव का नाम सुनकर और मेम साहव का चेहरा देखकर पुलिस ने आखिरकार गाड़ी छोड़ दी।

अंधेरा ही अंधेरा था कलकत्ता की सड़कों पर। वड़ा वाजार होकर आ रहा था रहीम। वड़ा डर लग रहा था रहीम को।

एक और जगह पहुंचने पर एकाएक एक कड़कती हुई आवाज सुनाई पड़ी, 'हूज देअर ?'

रहीम के कुछ जवाव देने के पहले सामने खड़ी एक दूसरी गाड़ी पर से उतरकर एक सार्जेण्ट चला आया वहां। फिर भीतर झांककर ही उसने फट् से कमर में वंधी पिस्तौल निकाल कर मेम साहव की ओर निशाना साध के···

लेकिन जिस वात को कोई नहीं जानता, उसको किसीका न जानना ही

अच्छा है।

रहीम भी तब पागल की तरह हो गया था।

सामने की ओर नजर उठाते ही देखा था कि वह सार्जेण्ट और कोई नहीं है, बमफील्ड साहब खुद हैं। कर्फ्यू में निकले हैं मेम साहब को ढूंढने। एका-एक बैनर्जी साहब उठ पड़े। रहीम का सपना भी टूट गया।

बैनर्जी साहब बोले, 'रहीम गाड़ी तैयार करो, चलूंगा।'

इसके बाद बमफील्ड साहब की ओर देखकर बोले, 'चलिये सर, आपको आपका वह पुराना कलकत्ता दिखलाऊं, डैड ओल्ड कैलकटा ओल्ड गोल्ड...'

मिस्टर बमफील्ड भी उठ पड़े। बोले, 'लेकिन बैनर्जी, आई टेल यू, मैंने जो भूल की है तुम न करना मेरी तरह यह भूल। पॉलिटी मत मेनटेन करना मेरी तरह। नहीं तो आखिर में बुढ़ापे में मेरी जो हालत हुई है वही तुम्हारी भी होगी। कण्ट्री हमेशा रहेगा, उसकी समस्याएं भी रहेंगी, पर तुम्हारी मानसिक शान्ति नष्ट हो जाने पर वह फिर नहीं लौटेगी। मेरी तरह जिन्दगी-भर तब निरुद्देश्य घूमते रहना पड़ेगा।'

बमफील्ड साहब की बात सुनकर बैनर्जी साहब अचंभे में आ गये। बोले, 'आप क्या कह रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आ रहा है सर।'

बमफील्ड साहब बोले, 'तब सुनो, इस बात को कोई नहीं जानता। सर जॉन केसी भी नहीं जानते थे। मैंने ही अपनी स्त्री की हत्या करने के लिए कर्फ्यू डिक्लेयर कर दिया था। फिर सड़क पर खड़ा हो गया था सार्जेण्ट की ड्रेस पहनकर। उस दिन मैंने अपने हाथ से ही अपनी स्त्री को गोली मारी थी...'

•

बैनर्जी साहब आज भी हैं सेक्रेटेरियट में। मिस्टर बमफील्ड भी इस दुनिया में कहीं न कहीं होंगे। उनके न होने पर भी कलकत्ता सेंट जॉन चर्च की सेमिट्री में उनकी स्त्री की कब्र मौजूद है। यही नहीं, इस कथानक का प्रत्येक चरित्र ही कहीं न कहीं किसी न किसी के मन में जीवित है। बेबू भी शायद पृथ्वी के किसी कोने में आज भी दूसरे का बोझ [illegible] लादे हुए जिन्दगी बिता रहा है। शायद क्यों, अवश्य ही। सिर्फ बेबू ही नहीं, सौदामिनी भी फिर अपने इलेकशन में खड़े होंगे। फिर जीवन के मोड़ से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। और यह [illegible] [illegible] [illegible]

के कारण कोई और दूसरा रास्ता चुन लेंगे। और केदार वोस ? केदार तो मरके ज़िंदा हैं। लेकिन रूपरतन वोस ? जब तक रूपरतन वोस जियेगा तब तक रूपरतन वोस में ही केदार वोस का दारिद्रय् अक्षय-अमर होकर उजागर बना रहेगा। इसीलिये वह बात अच्छी लगी थी मुझे। वही विलियम फॉकनर की कही हुई बात। मनुष्य मर नहीं सकता, मानव जाति का अंत नहीं हो सकता। तपन की मां तो मरना ही चाहती थी, लेकिन क्या मर पायी ? और यदि मर जाती तो पृथ्वी से क्या मनुष्य का निशान मिट जाता ? मृत्यु मनुष्य को वारंवार प्रलुब्ध करेगी, आघात करेगी, इन्सान को मिटाना चाहेगी, पर मनुष्य ने भी उसी मृत्यु से बचने के लिए अमृत का आविष्कार किया है। मनुष्य ने ही कहा है : येनाहं नामृता स्याम् किमहं तेन कुर्याम् । यह अमृत ही मनुष्य को मृत्यु की नश्वरता से सर्वदा रक्षा करता आया है। सर्वदा रक्षा करता रहेगा। मानव का अंत नहीं होगा, मानव का विनाश नहीं होगा। मृत्यु चाहे जितना मनुष्य का चिह्न मिटना चाहे, वह अजर-अमर-अमृत है।

विलियम फॉकनर ने इसी शाश्वत सत्य की ही पुनरावृत्ति की है अपने नोवेल् पुरस्कार-सभा के भाषण में : 'आई डिक्लाइन टु एकसेप्ट द एण्ड ऑफ मैन।'

●●●